सिद्धयोग

संस्थापक, संरक्षक एवं सम्पादक
योगायोगेश्वर, अनन्तश्री
चन्द्रमोहनजी महाराज

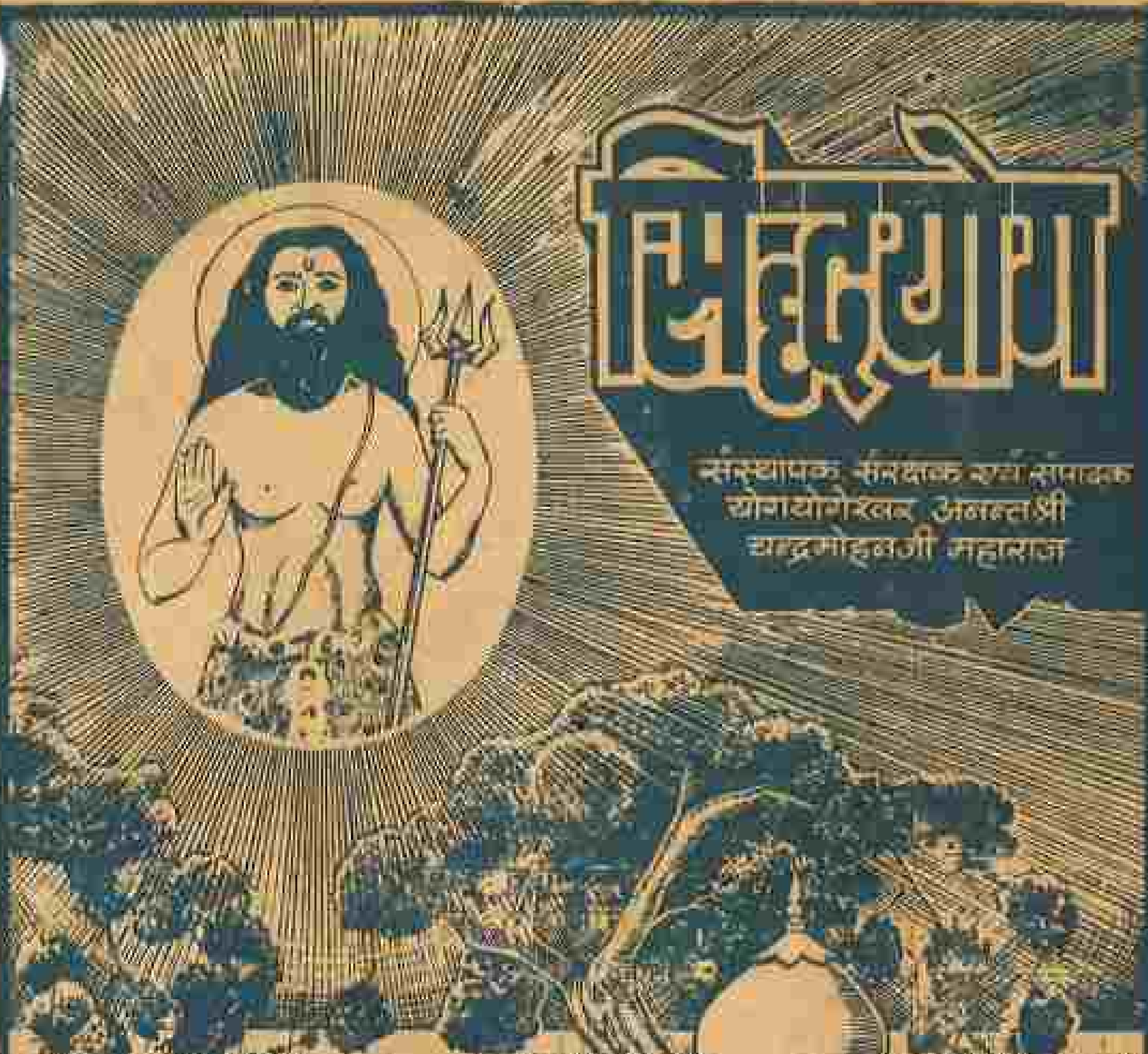

वर्ष 20
अंक १०

सन् १९८८

श्री सिद्ध गुफा प्रकाशन, सँवाई, आगरा

इस अंक में—

प्रकाशक
श्री सिद्धगुफा
सवाई

संयुक्त सम्पादक
'दिव्य'

जनवरी
१९८८

❀ यो न देवः पुनया स्मृत्या संयुनक्तु (प्रार्थना) १
❀ जीवात्मा का स्वरूप (विशेष लेख) २
योग-योगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहनजी महाराज
❀ जीवन में ध्यान और योग का महत्व ५
ब्रह्मचारी श्री ओमप्रकाश
❀ सुदीर्घ जीवी और स्वस्थ रहने के उपाय ८
श्री जी० एल० मेहरा
❀ त्याग की साधना १०
श्री कृष्णकुमार पाण्डेय
❀ वेद, उपनिषद् में गुरु की प्रतिष्ठा १३
श्री डा० विजयसिंह
❀ पत्रम्-पुष्पम्-फलम्-तोयम् १६
❀ इन्द्रिय निग्रह १८
सन्त श्री ज्ञानेश्वर
❀ सर्वं खल्विदं ब्रह्म नेह नास्ति कदाचन् २३
श्री जगदीशनारायण उपाध्याय
❀ जीवन यज्ञमय बनायें २७
सुश्री सुशीला
❀ श्री नानकदेव द्वारा नाम साधना एवं प्रभाव ३०
श्री डा० विजयसिंह
❀ ज्योतिष की दृष्टि में पुनर्जन्म विज्ञान ३५
डा० श्री महेन्द्रप्रकाश गुप्ता
❀ विश्वविभूति श्रीकृष्णचंद्र और उनकी गीता (कविता) ३६
डा० श्री हरिशङ्कर शर्मा
❀ गौ-सेवा का महत्व ४०
श्रीमती सुमङ्गलादेवी
❀ श्री सद्गुरुदेव और उनके कृपा-कण ४३
श्री विष्णुप्रसाद व्यास
❀ योग-साधना के कुछ नियम ४८

वार्षिक मूल्य २० रुपया। इस अङ्क का ४ रुपया

सिद्ध योग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिक पत्र

श्री सिद्धगुरु योग प्रशिक्षण केन्द्र, सपाई (एत्मादपुर) आगरा ।

वर्ष २०	ध्यायं ध्यायं यदिह परमं ब्रह्म शुद्ध स्वभावम्, मर्त्यो मृत्योर्मुखं विवरलो, मुक्तिं माप्नोति सद्यः । तत्प्राप्त्यर्थं बहुविधं योगशास्त्रोपदेशात्, कल्याणानां भवतु महतां सिद्धये 'सिद्धयोगः' ॥	जनवरी
अङ्क १०		१९८८

स नो देवः शुभया स्मृत्या संयुनक्तु

यो देवानां प्रभवश्चोद्भवश्च,
विश्वाधिपो रुद्रो महर्षिः ।
हिरण्यगर्भं पश्यत जायमानं,
स नो देवः शुभया स्मृत्या संयुनक्तु ॥

—श्वेताश्वर उपनिषद् ४/१२

अर्थात्

जो देवताओं की उत्पत्ति करने वाला है, ऐश्वर्य देने वाला है, जगत् में सबसे अधिक (श्रेष्ठ) है, उस महर्षि रुद्र ने पैदा होते हुए हिरण्यगर्भ को देखा, वह हमको अच्छी बुद्धि से युक्त करे ।

श्वेताश्वर उपनिषद् को देखने से ज्ञात होता है कि वह आदि से लेकर अन्त तक सारा-का-सारा शिवपरक ही है ।

—सम्पादक

हमारा विशेष लेख—

योग-योगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहनजी महाराज

आत्मा के अस्तित्व को सभी स्वीकार करते है किन्तु उसका स्वरूप क्या है ? इस बारे में भिन्न-भिन्न विचार है। पूज्य श्री गुरुदेवजी महाराज ने इस गहन विषय को दार्शनिक और स्वयं के अनुभवों के आधार पर अपने इस विशेष लेख में भली-भाँति सरलता से समझाने का प्रयास किया है। निश्चय ही 'सिद्धयोग' के पाठक इससे लाभान्वित होंगे।

—सं० सं०

जीवात्मा का स्वरूप

आज अकस्मात् बैठे-बैठे मेरे मन के अन्दर यह विचार पैदा हुये कि मैं अपने इस लेख में जीवात्मा के स्वरूप को पूरे-पूरे स्पष्टीकरण के साथ विस्तृत रूप से समझाऊँ। वैसे तो आत्मतत्व जीवात्मा परमात्मा में कोई विशेष भेद दिखलाई नहीं देता क्योंकि जीवात्मा को अनन्त, अविकारी एवं अविनाशी हमारे पूर्वजों ने भली प्रकार से अपने ग्रन्थों में वर्णित किया है अर्जुन को उपदेश देते हुये त्रिजगत्पावन परम योगेश्वर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजी ने जीवात्मा के स्वरूप को इस प्रकार से समझाया है।

य एनं वेत्ति हन्तारं
यश्चैनं मन्यते हतम् ।
उभौ तौ न विजानीतो
नायं हन्ति न हन्यते ॥

न जायते म्रियते वा कदाचिन्नायं
भूत्वा भविता वा न भूयः ।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो
न हन्यते हन्यमाने शरीरे ॥

वेदाविनाशिनं नित्यं
य एनमजमव्ययम् ।
कथं स पुरुषः पार्थ कं
घातयति हन्ति कम् ॥

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय
नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि ।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णा-
न्यन्यानि संयाति नवानि देही ॥

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि
नैनं दहति पावकः ।

न चैनं क्लेदयन्त्यापो
न शोषयति मारुतः ॥
अच्छेद्योऽयमदाह्योऽयम-
क्लेद्योऽशोष्य एव च ।
नित्यः सर्वगतः स्थाणुर
चलोऽयं सनातनः ॥
अव्यक्तोऽयमचिन्त्योऽयम-
विकार्योऽयमुच्यते ।
तस्मादेवं विदित्वैनं
नानुशोचितुमर्हसि ॥

अर्थात्—जो व्यक्ति इसको मारने वाला या मरने वाला समझता है वे ये दोनों ही नहीं जानते कि यह आत्मा कभी न जन्म लेता है और न मरता है यह अजन्मा है, नित्य है शाश्वत है और शरीर के मारे जाने पर नहीं मरता है। जो व्यक्ति इसको अविनाशी नित्य अजन्मा एवं न नाश होने वाला जानते हैं वे अपने मन में विचार करें कि कौन किस को मारता है व कौन मरता है। बात है तो केवल इतनी है कि जिस प्रकार से मनुष्य अपने फटे पुराने वस्त्रों को उतारकर फेंक देता है और नये वस्त्रों को पहन लेता है उसी प्रकार यह जीवात्मा अपने जीर्ण-शीर्ण शरीर को छोड़कर नये शरीरको धारण कर लेता है। वस्तुतः इसको न शस्त्र काट सकते हैं न अग्नि जला सकती है न जल गीला कर सकता है न हवा सुखा सकती है अतः यह आत्मा अच्छेद्य है, अभेद्य है, अदाह्य एवं अशोष्य है सदा सर्वदा रहने वाला अमर और सनातन है तथा अव्यक्त, अचिन्त्य, और अविकारी कहा गया है अतः आत्मा से सम्बन्धित इस श्लोक के समझने वाले व्यक्ति को कुछ भी चिन्ता नहीं करनी चाहिये। ठीक इन्हीं भावों का निरूपण करते हुए योग-दर्शन के "योगश्चित्तवृत्ति निरोधः" इस सूत्र के भाष्य में श्री व्यासदेवजी महाराज आत्मा के स्वरूप का प्रतिपादन करते हुये यह पंक्ति लिखते हैं:—

चिति शक्तिरपरिणामिन्य प्रतिसङ्क्रमा दर्शितविषया शुद्धा चानन्ता च।

अर्थात्—चेतन शक्ति जीवात्मा बिल्कुल अपरिणामी है, शुद्ध है, अनन्त है और न ही इसके ऊपर किसी का प्रभाव पड़ता है। ऐसी स्थिति में जीवात्मा परमात्मा में भेद हुआ तो क्या हुआ। उपरोक्त पंक्ति में एक शब्द इस प्रकार का है जो जीवात्मा और परमात्मा की भिन्नता को स्पष्ट कर देता है। वह शब्द है "दर्शितविषया"। अर्थात्—अनन्त अविनाशी एवं अविकारी होते हुये भी जीवात्मा पर बौद्धेय-बोधों का प्रभाव है। इस बात को इस प्रकार से समझना चाहिये जैसे जगमगाती हुई अखण्ड ज्योति जल रही हो, उस ज्योति को लाल शीशे से देखा जाये तो वह लाल ज्योति दिखलाई देगी, काले शीशे से काली हरे शीशे से हरी व नीले से नीली दिखाई देगी। ज्योति के अन्दर वस्तुतः हरा व नीलापन कुछ भी नहीं है। वह तो ज्यों का त्यों शुभ्र तेजोमय ही है। इसी बौद्धेय बोध के कारण जीव के स्वरूप को

समझाते हुये वैशेषिक दर्शन में जीव का लक्षण इस प्रकार कहा गया है—

इच्छाद्वेषप्रयत्नसुख-दुःखज्ञाना-न्यात्मनो लिङ्गम् ।

अर्थात्—अौद्वैत बोध के कारण मन में विविध प्रकार की इच्छायें पैदा होती रहती हैं और उनके पूर्ण न होने पर मन में द्वेष भावना अभिघात आदि भी होते हैं और वैसा होने पर उन कष्टों को हटाने के लिये मनुष्य प्रयत्न भी करता है। यदि प्रयत्न में सफलता मिल जाती है तो सुख अनुभव करता है और सफलता न मिलने पर दुःख से ही भरा रहता है यही उसका घोरतम अज्ञान है जो वस्तुतः आत्मा में नहीं प्रत्युत बुद्धि में है यही अज्ञानावरण रात-दिन जीवों के क्लिष्टाक्लिष्ट वृत्तियों का उत्थान-पतन करता रहता है। जिससे जीव मात्र के जन्म और मरण का चक्र चलता रहता है। इसी को हटाने के लिए योगी लोग प्रयत्नशील रहते हैं, और वे लोग यह चाहते रहते हैं कि अपने स्वरूप को गुणातीत अवस्था के अन्दर देखें। प्रयत्न करते रहने पर योगी लोग निस्त्रैगुण्य स्थिति को पाकर निर्बीज समाधि में पहुँच कर इस भव-बन्धन से छूट जाया करते हैं। इसलिए जन्म-मरण की दात्री इस दुःसह्य स्थिति को छोड़ देने के लिए एवं अपने आपको शुद्ध स्वरूप में ले जाने के लिए हर साधक को प्रयत्नशील बने रहना चाहिये। ऐसी कोई वस्तु नहीं जो मनुष्य उपलब्ध न कर सके। हिमालय के अन्दर हजारों योगी इस प्रकार के बैठे हैं जो अपने शुद्ध स्वरूप को पाकर जीव कोटि से ऊपर उठ गये व भव-बन्धन से मुक्त हो गये। भव-बन्धन से मनुष्य किस प्रकार से मुक्ति पायेगा इन सब बातों को विचारकों ने 'मुण्डे-मुण्डे मतिर्भिन्ना:' के नियमानुसार अपने विचारों को ही व्यक्त किया है किन्तु आप्त पुरुषों द्वारा दृष्ट विषय ही साधक के लिए परिपालनीय सिद्धान्त है। इस लेख के अन्दर कुछ पंक्तियों में जीवात्मा के स्वरूप को समझा दिया है, इससे आगे के दूसरे लेख में ईश्वर का क्या स्वरूप है और मनुष्य भव-बन्धन से निवृत्ति के लिए किन-किन उपायों का अवलम्ब ले ये सब बातें समझाई जायेंगी।

जीवन से लिपट कर मत जियो क्योंकि जीवन एक आग है जला देगा। लेकिन साथ ही जीवन से अलग होकर भी मत रहो क्योंकि इससे आग बुझ जायेगी। इसे जलाओ एक आग की तरह—अपने से अलग लेकिन हथेली पर लेकर चलते चलो। ताकि जीवन प्रज्वलित रहे, ऐसा होने पर भी तुम्हें लोग जीवन्त व्यक्ति की संज्ञा देकर पुकारेंगे।

—एक महात्मा

जीवन में ध्यान और योग का महत्व

ब्रह्मचारी श्री ओमप्रकाश

योग का सीधा-सादा अर्थ "जोड़" है। गणित की किसी भी एक संख्या को दूसरी संख्या से मिलाने को जोड़ अथवा योग कहते हैं। जब हम अपने को किसी के साथ जोड़ते हैं, तो वह भी योग कहलाता है। उदाहरण के लिए जब हम अपने आपको किसी मित्र के साथ जोड़ते हैं, तो वह मित्र योग, पति या पत्नी के साथ जोड़ते हैं तो वह पति-पत्नी योग, जब गुरु से अपने आपको जोड़ेंगे, तो वह गुरु-शिष्य योग बन जायगा। ठीक इसी प्रकार जब हम अपने आपको परमात्मा से जोड़ेंगे तो वह मिलन जीवात्मा और परमात्मा योग कहलायेगा। गणित के सिद्धान्त के अनुसार दो और तीन की अलग-अलग संख्या है, लेकिन जब इनको जोड़ा जायगा तो दो और तीन मिलकर पाँच एक संख्या बन जायेगी। इस प्रकार दो के स्थान पर एक बन जाना ही योग है।

मन को किसी एक में स्थिर करना किसी एक में लय करना, दोनों को एक करना, आत्मा और परमात्मा का मिलन करना, शिव और शक्ति, पुरुष और प्रकृति का मिलन करना योग ही है। योग आत्म-साक्षात् करने आत्मा को परमात्मा में लय करने तथा परमानन्द प्राप्त करने का साधन है।

अपने सांसारिक, व्यावहारिक, दैनिक क्रिया-कलापों को ध्यानपूर्वक अर्थात् पूर्ण मनोयोग से करना, ध्यानसे करना ध्यानयोग कहलाता है। उदाहरण के लिए, भोजन करते समय हमारा ध्यान ग्रास को चबाने और उसे निगलते रहने से वह ध्यानयोग बन जाता है। इसी प्रकार व्यापार, धन्धा, नौकरी आदि करते समय हमारा ध्यान और हमारी दृष्टि केवल अपने कार्य में रहती है तो वह व्यापार आदि कार्य भी ध्यानयोग बन जाता है। ठीक इसी प्रकार अध्यात्म-जगत् में प्रवचन ध्यानसे सुनना, कीर्तन ध्यान से करना, ठाकुर-सेवा ध्यान से करना, स्वाध्याय, पूजा-पाठ, जप आदि ध्यान से करना सभी ध्यानयोग की परिधि में आ जाते हैं।

योग-दर्शन के "तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम्" सूत्र के अनुसार किसी लक्ष्य में चित्त को तैल धारावत् अविच्छिन्न रूप से प्रवाहित करना ही ध्यान कहलाता है। जीवनके प्रत्येक (लौकिक व पारलौकिक) क्षेत्र में ध्यान का बहुत ही महत्व है। बिना समुचित ध्यान से जीवन-यात्रा भी सम्भव नहीं है, साधना की तो बात ही दूर रही। विशुद्ध कर्म और भक्ति के क्षेत्र में भी ध्यान का अत्यधिक महत्व है। योग-दर्शनकार भगवान् पतंजलिदेवजी ने ध्यान की परिभाषा सार्वभौम की है। जिस भी वस्तु या विषय को ध्येय बनाया जाय—मूर्त, अमूर्त, लौकिक, अलौकिक चाहे वह जिस रूप में क्यों न हो, उसमें इस प्रकार वृत्ति लगाई जाये कि विषय की कोई अन्य वस्तु अथवा विषय आकर्षण अथवा व्यवधान न

उत्पन्न कर सके। ध्याता और ध्येयको मिलाने वाला व्यापार ध्यान ही है। इस प्रकार चित्त की एकाग्रता ही ध्यान का प्रयोजन है।

योग-दर्शन में जिस प्रकार चित्त की एकाग्रता के लिए अनेक उपाय बताये है—उसी प्रकार ध्येय के स्वरूपों का भी विवेचन किया गया है। इस सम्बन्धमें दो सूत्र विशेष विचारणीय है—(१) 'वीतराग विषयं वा चित्तम्', तथा (२) 'यथाभिमत ध्यानाद्वा।' अर्थात् किसी वीतराग पुरुष को ध्येय बनाकर उसमें चित्त को स्थिर करने से चित्त में एकाग्रता आ जाती है। दूसरे में ध्येय को और भी व्यापक बताते हुए कहा है कि जिस साधक का जो भी अभिमत हो, वह उसे ही ध्येय बना सकता है। तीसरा सूत्र है स्वप्न और निद्रा में यदि मन कहीं टिक गया है तो उसे भी ध्येय बनाया जा सकता है।

ध्यान का सबसे प्रमुख प्रयोजन और उपयोग तो यही है कि चित्तवृत्तियां विभिन्न विषयों से हटकर एक विषय पर केन्द्रित हो जायें और बाकी तो विषय की स्वरूप भावना पर निर्भर है। वह भी संस्कारों से, सत्संग से अथवा उपदेश से ही हो सकता है। इसलिए समाधि-योग में धारणा और ध्यान अनिवार्य अङ्ग माने गये हैं। धारणा से भाव परिपक्व होता है और ध्यान से दृढ़, यही दोनों का भेद है इसलिये ध्यान को एक योग ही कहा गया है जो समाधि अवस्था का साधक है। भक्ति के क्षेत्रमें भी ध्यान समाधि सबंध्य है। भक्तिके क्षेत्रमें ध्यानका अनिवार्य अङ्ग स्मरण है, पुनः-पुनः स्मरण है, निरंतर स्मरण है, क्योंकि स्मरण ही आसक्ति का मूल है जैसा कि गीतामें कहा है—"ध्यायतो विषयान्पुंसः संगस्तेषूपजायते" जैसे आसक्ति बढ़ेगी, चित्तवृत्ति में स्थिरता आती जायेगी और धीरे-धीरे ध्याता और ध्येय के भेद का भाव भी नहीं होगा। उस स्थिति में श्वास-प्रश्वास की गति मन्द होते-होते स्वयं ही स्थिर हो जायेगी। इसी को भक्ति-भाव समाधि कहते है, जिसमें देहाभ्यास भी छूट जाता है।

विषय का ध्यान

उसकी परिणति और उससे मुक्ति गीता के दूसरे अध्याय के ६२-६३ वें सूत्र में बताया गया है कि विषय का ध्यान करने से विषय में आसक्ति होती है। आसक्ति के कारण ही विषय का चिन्तन ध्यान होता है। आसक्ति होने से विषय को प्राप्त करने की कामना होती है। कामना की पूर्ति न होने पर क्रोध पैदा होता है और क्रोध, मोह की उत्पत्ति होती है। मोह से स्मृति नाश होता है और स्मृति नाश से बुद्धि का नाश होकर मनुष्य विनाश के गर्त में जा गिरता है। लेकिन यह क्रम सभी संसारी जीवों का नहीं, क्योंकि उनकी मनोवृत्ति विषयों पर आश्रित न होकर उनके फल पर आश्रित होती है। यदि मनुष्य मनोवृत्ति फलाश्रित न होकर विषयाश्रित एवं विषयाकार होने लगे, तो पापी से भी पापी व्यक्ति इस भव-सागर से तर सकता है, क्योंकि विषयाकार वृत्ति में भावना का ही

खेल है, कलाकार वृत्ति में उपलब्धि और उपयोग का है। इसीलिए गीताकार ने तुरन्त ही कह दिया कि राग-द्वेष का भाव विषयान्तर पर आसक्ति से होता है अथवा फलासक्ति से होता है। विषयान्तर वृत्ति में शरीर, प्राण और चित्त में एक-सूत्रता हो जाती है।

विषय-वासना और उसका परिहार

विषय-वासना उस संस्कार को कहा जाता है जो विषयों की अनुभूति से उनके सम्बन्ध में उत्पन्न होती है। अनादि संसारमें विषयानुभूति की परम्परा अनादि काल से चली आ रही है। उसके परिणामभूत विषय-वासना का प्रवाह भी अनादि और अनवरत है; यही संसार-चक्र का मूल कारण है, उसकी निवृत्ति अत्यन्त दुष्कर है। विषय के उपस्थित होने पर वासना जग सकती है, इसके लिये दो ही उपाय है—एक योग-दर्शन का और दूसरा भक्ति-दर्शन का। दोनों दर्शनों में त्रिपुटी का लय होने से विषय की विषमता समाप्त हो जाती है। भक्ति-दर्शन का विशेष उपाय गीताकार ने बताया है—

विषया विनिवर्तन्ते,
निराहारस्य देहिनः।
रसवर्जं रसोऽप्यस्य,
परं दृष्ट्वा निवर्तते॥

—गीता ३/५६

वास्तव में यह रस ही वासना है जो भगवत्साक्षात्कार अर्थात् भगवदाकार वृत्ति से निर्मूल होती है।

ध्यान की दृढ़ता के लिए उसका अभ्यास परमावश्यक है और यह नाम जप-साधना से अनायास सम्पन्न होता है, क्योंकि नाम और नामी अभिन्न हैं, इसलिये नाम-साधना से नामी के स्वरूप पर ध्यान जमने लगता है। स्वरूप वृत्ति परिपक्व होने पर साधक फिर नाम पर ही लौट आता है, क्योंकि ध्यान की परिपक्वता में केवल ध्वनि ही अवशिष्ट रह जाती है। ध्यान के अभ्यास में चित्त की एकाग्रता ही साध्य है, इसीलिए यथासमय चित्त को शरीर से अलग रखने का अभ्यास करना चाहिए अर्थात् न तो शरीर की आवश्यकताओंकी ओर ध्यान दें और न ही शरीर को विशेष साधनेकी ओर। दोनों ही अवस्था में चित्त को शरीर में लगाना होता है। चित्त की वृत्ति अविच्छिन्न तैल धारावत ध्येय में लगी रहेगी तो शरीर से वह स्वयं विरत हो जायेगी और अनायास ही केवली कुम्भक की सिद्धि हो जायेगी। शरीर की क्रिया को रोक देना, स्थिर कर देना ही तो आसन और प्राणायाम की सिद्धि है, यह भक्तों का क्रियायोग है। इसी प्रकार जब कामनाओं का केन्द्र इष्ट अथवा ध्येय हो जायेगा तो धारणा और ध्यान की सिद्धि हो जायेगी। इच्छा और क्रिया का नियंत्रण होने पर केवल ज्ञान रह जाता है जो भक्त के लिए भगवदाकार वृत्तिस्वरूप ही है।

भक्ति-साधना के चार सोपान है—नाम, रूप, लीला और धाम। साधनाके लिए श्रद्धा और विश्वास का सम्बल अनिवार्य है। इसी प्रकार गुरु भी अनिवार्य अंग है। साधना के

सुदीर्घ-जीवी और स्वस्थ रहने के उपाय

श्री जी० एल० मेहरा

१. प्रातःकाल जागना—ब्राह्ममुहूर्त में बिस्तर से उठ जावें और उदय होते सूर्य के पाँच-दस मिनट दर्शन करते रहें।

२. उष:पान—प्रातः शौच जानेसे पहले बासी पानी पीवें। यह पानी रात को तांबे के पात्र में रखा हो तो अच्छा है। अति शीत में इसे मामूली गर्म करके पीवें।

३. शौच—मलमूत्र का त्याग प्रातः जागते ही ठीक प्रकार हो जाना चाहिए। रोगों की जननी कब्ज को अपनी प्रकृति अनुकूल उप-चार से शीघ्र हटा लेना उचित है।

४. दन्तधावन—कीकर, फूला या नीम आदि की दातुन अथवा मंजन या पेस्ट द्वारा मुंह के अन्दर का मैल, कफ व बलगम निकाल लें, इससे दांत साफ व मजबूत रहते हैं।

५. मालिश—सरसों आदि के तेल से सारे शरीर पर मालिश किया करें। शीत-काल में धूप में मालिश करना अधिक लाभ-दायक है। जब कभी सारे शरीर पर न हो सके तो पैरों के तलों पर जरूर करलें।

६. व्यायाम—शुद्ध वायु दण्ड, बैठक, कुश्ती, योगासन करें, तैरें या टैनिस आदि खेलें अथवा लम्बी सैर किया करें।

७. स्नान—शरीर को साफ व सम्बल बनाये रखने के लिए नित्य प्रातः स्नान करें। गर्मियों में सायंकाल भी कर लेना चाहिए।

८. संध्या प्राणायाम—शुद्ध वायुमण्डल में प्राणायाम अथवा दीर्घ-निश्वास से मन को वश में करके दोनों सन्धिसमय सन्ध्या के मन्त्रों से व गायत्री जाप करते हुए परमात्मा से सुख शान्ति, स्वास्थ्य, दीर्घ आयु व सद्बुद्धि की याचना किया करें।

९. हवन—हर रोज श्रेष्ठतम कर्म अग्नि-होत्र करके वातावरण पवित्र, जलवायु स्वा-स्थ्यप्रद रोगनाशक बनायें और प्राणिमात्र का उपकार करें।

१०. पहिरावा—सदा सादा सुथरे, ऋतु अनुकूल, आरामदेह और प्रसन्नताप्रद वस्त्र पहिनें।

प्रथम क्रम में गुरु प्रदत्त मन्त्र के जप के साथ गुरु के सम्पूर्ण विग्रह में भाव-मग्न होने की आवश्यकता होती है। ध्यान की दृढ़ता का प्रमाण यह है कि साधक के मनोराज्य में गुरु लीला का चिन्तन ही सर्वोच्च हो जाता है। साधना के द्वितीय क्रममें चित्तवृत्तियाँ द्रवीभूत होनी प्रारम्भ हो जाती हैं और लीला में आसक्ति हो जाती है, मनोराज्य समाप्त प्रायः हो जाता है। साधनाके तृतीय क्रम में आनन्दो-पलब्धि होने लगती है और चतुर्थ क्रम में पूर्ण समर्पण हो जाता है तथा इष्टाकार वृत्ति हो जाती है। ध्यानावस्था में मन, प्राण का लय करना होता है, जिससे सत्वगुण की वृद्धि होती है तथा मन स्थिर हो जाता है। साधा-रण साधकों के प्राण में मन का लय रहता है, जिससे मनोराज्य भी चलता रहता है और ध्यान भी। मन को भगवान् में लीन करना अथवा चित्तवृत्तियों को अन्तर में आत्मा में स्थिर करना ही तो ध्यान का चरमलक्ष्य है।

—※—

११. आहार—हितभुक्-मितभुक्-ऋतभुक् अर्थात् हितकारक, ठीक मात्रा में और मौसम व समय अनुकूल खावें-पीवें। मादक व अभक्ष्य पदार्थ स्वास्थ्य बिगाड़ते हैं और आयु क्षीण करते हैं। औषधियां खाते रहने का स्वभाव न बनावें बल्कि "जब तक काम चले परहेज व गिजा से, तब तक चाहिए, बचना दवा से"।

१२. निद्रा—नींद व विश्राम शरीर के लिए आवश्यक है। इनसे शारीरिक बैटरी चार्ज होती है। यदि कभी नींद न आए तो लेट कर शरीर को ढीला और मन को निर्विषय करके विश्राम ही कर लेवें।

१३. ब्रह्मचर्य—आहार व निद्रा की तरह ब्रह्मचर्य भी शरीर का आधार स्तम्भ है। वीर्यरक्षा दीर्घ जीवन और वीर्यनाश शीघ्र मृत्यु के हेतु हैं, अतः ब्रह्मचर्य का सदा पालन करें। याद रखें, "विषय का विषधर जब डसे ओम् जड़ी को खाय। है नाग दमन की औषधि ढूंढन दूर न जाय॥"

१४. निवास—शुद्ध वातावरण में और खुले व बिना रोक-टोक धूप व हवादार स्थान में ही रहना स्वास्थ्यप्रद है।

१५. धनोपार्जन—वेद-आदेशानुसार 'स्याम पतयो रयीणाम्'। 'मा गृधः कस्यस्विद् धनम्' अर्थात् धनवान् बनो पर पराए धन का लोभ कभी न करो। ईमानदारी व स्वास्थ्य अनुकूल परिश्रम से कमाया हुआ धन ही सुखशान्तिदायक होता है। बेईमानी की कमाई अन्त में दुःखदाई होती है।

१६. ऋतुचर्या—वसन्त, ग्रीष्म, वर्षा, शरद्, हेमन्त, शिशिर सभी ऋतुओं में अनुकूल रहन-सहन खान-पान व पहराव सदा रखें।

१७. वेगनिरोध—मलमूत्र, अपान, वीर्य, डकार, उल्टी, उबासी, छींक, दौड़ने आदि से उत्पन्न सांस, आंसू, नींद, भूख और प्यास, ये तेरह स्वाभाविक वेग हैं, इन्हें कभी न रोकें। इनके रोकने से रोग उत्पन्न होते हैं।

१८. विष-निःसारण—शरीर के अन्दर जो स्वाभाविक विष उत्पन्न होता रहता है उसे, योग्य चिकित्सक की सम्मति से जुलाब, अनीमा व उल्टी द्वारा कभी-कभी निकालते रहें और मानसिक दोष व द्वेष स्वाध्याय व सत्सङ्ग से सदा निवारण करते रहें।

१९. स्वभाव—बुराइयों का ज्ञान होते हुए भी काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहङ्कारवश हानिकर कर्म-मांस, मदिरा, सिगरेट आदि का सेवन व बुरे लोगों की संगति करना, स्वाभाविक वेगों को रोकना, अधिक बोलना, चिन्ताग्रस्त रहना बुद्धि दोष है। इनसे सदा बचने और प्रसन्न चित्त रहने का स्वभाव बनाये रखें।

२०. आशीर्वाद—माता-पिता, आचार्य व पूज्य वृद्धों तथा महात्माओं की सेवा-सुश्रुषा करते हुए इनका हार्दिक आशीर्वाद प्राप्त करते रहें। इनका आशीर्वाद और ईश्वर-भक्ति सुदीर्घ-जीवी होने और स्वस्थ रहने के मुख्य उपाय हैं।

—※—

त्याग की साधना

श्री कृष्णकुमार पाण्डेय

ईश्वर परम दयालु है। जीव के किसी एक सद्गुण पर ही रीझ जाते है, परन्तु यह एक सद्गुण मनुष्यको अपनी समझ का विषय नहीं होता है। यह तो उर-प्रेरक बनकर उपयुक्त अवसर पर कुछ ऐसे कर्म संस्कार बना देता है, जिससे साधक अन्य सद्गुणों को ग्रहण करने का अवसर पा जाता है। हमारे परम दयालु सद्गुरु भगवान् अपने बालकों को इसी प्रकार का कुछ दान करते रहते हैं, परन्तु अल्पज्ञानी हम सब संसारी पुरुष प्रभु की उस सूक्ष्म कृपाका कारण जान नहीं पाते हैं। बाद में यदि बुद्धि सात्विक रही तो पाने के भाव का कुछ बोध हो पाता है, परन्तु यदि बुद्धि वैसी सहज एवं सात्विक नहीं रही तो कर्त्तापन का अहंकार आ जाता है। यह अहंकार ही साधक के मार्ग में व्यवधान उत्पन्न कर देता है। इसलिये सिद्धपथ के अनुगामी व्यक्ति को सर्वंव प्रभु की वाणी को पूर्ण रूपसे सुनकर मनन व चिन्तनकर करना चाहिए। यह वाणी किसी भी परिस्थिति में यथा विनोदमें साधन में या समुदाय विशेष को सम्बोधन करके कही गई है।

योग के यम-नियमों की साधना में त्याग की साधना भी परम कल्याणका पाथेय बनती है। भगवती गीता ऐसी ही बात का संकेत करती है। इसमें दो मुख्य पात्र दृष्टिगत होते है—प्रथम योगयोगेश्वर नारायण भगवान् कृष्ण जो उपदेष्टा है। दूसरे नर के प्रतिनिधि रूप शंकालु हृदय महाभाग अर्जुन। भगवान् कृष्ण बड़े कौतुकी है, स्वयं ही शङ्का पैदा कर देते है, पुनः उसका समाधान भी करते है। यह बात इस प्रकार समझी जा सकती है। भगवान् कृष्ण गोप बालकों के साथ यमुना-तट पर काली-दह नामक स्थान पर गेंद खेल रहे थे, गेंद सुदामाजी की थी। भगवान् कृष्ण जानते थे कि इस स्थान का पानी कोई नहीं पीता है। जो भूल से पी लेता है, वह निश्चय ही मृत्यु को प्राप्त हो जाता है। इसी दोषको दूर करने के लिए लीला स्वरूप भगवान् ने गेंद को पानी में फेंक दिया। अब सुदामाजी अत्यन्त क्रोधित हो गये। सब लोगों ने कहा—भाई, खेल-खेल में चली गयी तो तुम दूसरी लेलो। लेकिन वे भी हठी ठहरे, बोले—लेंगे तो वही गेंद लेंगे। बस क्या था? कौतुकी नाथ को अवसर मिल गया। वे काली-दह में कूद गये तथा उनको वही गेंद लाकर दे दी। इसी प्रकार के कौतुक युद्ध के समय अर्जुन के साथ बार-बार करते थे।

एक बार त्याग के बारे में ही अर्जुन को शङ्का हो गई। वे भगवान् से पूछते है—

संन्यासस्य महाबाहो,
तत्त्वमिच्छामि वेदितुम्।
त्यागस्य च हृषीकेश,
पृथक्केशिनिषूदन ॥

—गीता १८/१

इस पर भगवान् अर्जुन को सम्बोधित कर कहते है—

काम्यानां कर्मणां न्यासं,
संन्यासं कवयो विदुः।
सर्व कर्म फल त्यागं,
प्राहुस्त्यागं विचक्षणः ॥

त्याज्यं दोषवदित्येके,

कर्म प्राहुर्मनीषिणः ।

यज्ञदानतपःकर्म न,

त्याज्यमिति चापरे ॥

—गीता १८/२-३

भगवान् पुनः अर्जुन को तीन प्रकार के त्याग का उपदेश देते हैं। यह है तामस, राजस एवं सात्विक। इसमें सात्विक त्याग ही श्रेष्ठ त्याग बताते हैं। तामस त्याग को बताते हैं कि:—

नियतस्य तु संन्यासः

कर्मणो नोपपद्यते ।

मोहात्तस्य परित्यागस्-

तामसः परिकीर्तितः ॥

—गीता/१८/७

हे अर्जुन नियत कर्म का अर्थात् प्रकृति के अनुसार शास्त्र विधि से नियत किये हुए जो वर्णाश्रम के धर्म और सामान्य धर्म रूप स्वाभाविक कर्म है जो विभिन्न नामों से जाने जाते हैं यथा स्वधर्म, सहजकर्म, स्वकर्म, नियतकर्म, स्वभावकर्म, स्वभावनियतकर्म आदि त्याग करने योग्य नहीं है, इसलिए मोह से उसका त्याग करना तामस त्याग कहा गया है।

दुःखमित्येव यत्कर्म

कायक्लेशभयात्त्यजेत् ।

स कृत्वा राजसं त्यागं

नैव त्यागफलंलभेत् ॥

—१८/८

जो कुछ कर्म है वह सब दुःख रूप ही है ऐसा समझकर यदि कोई शारीरिक क्लेश के भय से कर्तव्य कर्मों का त्याग करदे, तो वह ऐसा राजस त्याग करके त्याग के फल को किसी प्रकार भी नहीं पाता। क्योंकि इसमें जो शारीरिक कष्ट का दुःख है वह बना रहता है भगवान सात्विक त्याग को बताते है—

कार्यमित्येव यत्कर्म

नियतं क्रियतेऽर्जुन ।

सङ्गं त्यक्त्वा फलं चैव

स त्यागः सात्विकोमतः ॥

अर्थात्—हे अर्जुन ! जो शास्त्र विहित कर्म करना कर्तव्य है—इसी भाव से आसक्ति और फल का त्याग करके किया जाता है वही सात्विक त्याग माना गया है।

आगे भगवान देहधारी पुरुषों की गति को बताते हुए कहते है कि—अर्जुन ! देह-धारी पुरुष के द्वारा सम्पूर्णता से सब कर्म को त्यागना सम्भव नहीं है। इसलिए वे कर्मफल का त्याग सहज वृत्ति से करें, जो ऐसा करता है वही सच्चा त्यागी कहा जाता है।

योग पथ पर बढ़ते हुए साधक जो सदैव जिज्ञासु वृत्ति से क्रमशः उच्च साधनाओं पर पहुँचने की चेष्टा रत रहते हैं उन्हें चाहिए कि सकाम कर्म और द्रव्य आदि का त्याग करें। जो लोग त्याग के बिना व्यर्थ ही सहज एवं विनम्र होने का यत्न करते है उन्हें क्लेश उठाने पड़ते हैं। द्रव्य आदि का त्याग करने के लिए व्यक्ति को चाहिए कि यज्ञ आदि कर्म करें। भोग का त्याग करने के लिए व्रत

के नियमों का पालन करें। दैहिक सुखों के त्यागने के लिए तप करें, तथा सब कुछ त्याग करने के लिए योग का आश्रय ग्रहण करें। त्याग की चरम परिणति योग है। जो प्रभु कृपा से प्राप्त है।

हमारे ऋषियों, मुनियों एवं प्राचीन सन्तों ने योग का आश्रय ग्रहण कर समस्त दुःखों से छुटकारा पा लिया। हमारे आदर्श पुरुष त्याग की किसी एक साधना को जीवन के व्यवहार में लाकर आगे बढ़ गये और तृष्णा का त्याग करके परम कल्याण के भाजन बने। इस कलिकाल में जबकि सब जगह मात्र स्वार्थ राग ही दीखता है। जो बन्धन का कारण है। आज के युग में प्रवृत्ति-धर्मी व्यक्ति गृहस्थाश्रम में रहकर स्वाभाविक एवं सहजभाव से जो त्याग हो सके, उसे करके परम कल्याण का अधिकारी बना सकता है। गृहस्थाश्रम का सबसे बड़ा त्याग है शास्त्र के अनुसार गुरुदेव के वचनों के बताये मार्ग का अनुसरण करके कार्य करना। क्योंकि इसमें हम अपनी वृत्तियों का त्याग करते हैं। इसके अतिरिक्त इन्द्रियों पर संयम करके उनको अन्तर्मुखी बनाना भी त्याग ही है। क्योंकि इससे बहिर्मुखता नहीं आयेगी। साधक धीरे-धीरे आगे बढ़ता जायगा। योग साधक को अन्य पतनकारी वृत्तियों का भी त्याग आवश्यक है जैसे—चोरी न करना, लोभ, मान, बड़ाई, अभक्ष्य भोजन, प्रमाद तथा स्वार्थ के लिए दूसरों के श्रम का शोषण कर आदि।

इस प्रकार त्याग की बहिरङ्ग साधना जो करते हुए, व्यक्ति सद्गुरुदेव के उपदेशों को सुनकर जब उस पर अमल करने का साधन ही उसके लिए उत्तम फल प्राप्त दायी बनेगा।

अमृत-बिन्दु

- किसी का भी बुरा न चाहना ही साधक का सर्वप्रथम व्रत होना चाहिये।
- साधक जितना जानता है, उतना मानकर उसका पालन करना आरम्भ करदे तो आगे की आवश्यक जानकारी स्वतः प्राप्त हो जाती है; यह भगवत्कृपा की महिमा है।
- जब तक भोगों की लालसा हृदय में भरी रहेगी, तब तक भगवान् को हृदय में स्थान कैसे मिलेगा ? अतः पहले भोगों की कामना का त्याग करके भगवान् से मिलने की लालसा को प्रबल बनाना चाहिये।
- हमारे पास जो भी वस्तु, योग्यता, सामर्थ्य आदि है, वह सब समाज की ही है, अपनी नहीं। हमसे भूल यह होती है कि उस वस्तु आदि को अपनी मानकर उससे सुख भोगने लगते हैं। इससे हमें विवश होकर दुःख भोगना पड़ता है।
- साधन में विशेष आदरबुद्धि होने से साधन तेज होता है। साधन को जितना आदर देना चाहिये, उतना आदर न देने से ही साधन में शिथिलता आती है और सफलता भी प्राप्त नहीं होती।

वेद उपनिषदादि में गुरु की प्रतिष्ठा

❀ डा० श्री विजयसिंह

अपनी प्राप्ति के लिए ही ईश्वर ने अपना गुरु-स्वरूप संसार में प्रकट किया है। उसके नाना रूप के पीछे परम वात्सल्य-भाव एवं करुणा-निहित है। यह तत्त्व एक है—परमार्थ के साधक चाहे जिस मत-मतान्तर को मानने वाले हों सबका वही संरक्षक, पोषक तथा पथ-प्रदर्शक है। श्री प्रभुजी कहा करते हैं—यह मेरा शरीर गुरु नहीं है, परम-सत्ता इसका आधार लेती है। इसमें जो ज्ञान, स्नेह शक्ति-संचार तथा ज्योति है वही परम-गुरु का है। अतः गुरुदेव के रूप में हर साधक परम-गुरु की ही अर्चना करता है। क्योंकि शरीर में उसी सत्ता का प्राकट्य हुआ रहता है। अतः दीखता हुआ मनुष्य रूप में उस परम परमेश्वर का ही प्राकट्य हुआ करता है। गुरु-गीता में सारे पुराण एवं तन्त्र-मन्त्र-शास्त्रों में गुरु की महत्ता का वर्णन परम प्रचुरता से किया गया है। हम आगे सनातन धर्म के आधार, वेदों और उपनिषदों में गुरु-माहात्म्य के बारे में कहाँ क्या बताया गया है, इसे यहाँ संक्षेप में देखने की चेष्टा करेंगे।

ज्ञान व उपासना के सारे स्रोत आगम व निगम में वर्णित हैं। आगम ग्रन्थों में प्राप्य ईश्वर तथा अन्वेषक जीव के हितार्थ पथ-प्रदर्शक, ज्ञान-प्रदाता के ही रूप में गुरु की प्रतिष्ठा की गई है। वहीं निगम ग्रन्थों में गुरु की प्रतिष्ठा ईश्वर से भी बढ़कर आरोपित की गई है। साधक सद्गुरु से शक्ति प्राप्त कर तथा उनके अनुवर्ती होकर आत्मानुसंधान में लगता है। ज्यों ज्यों वह अन्तर्जगत् में प्रवेश करता है, उसे सद्गुरु के ऐश्वर्य, वात्सल्य व करुणा का अधिकाधिक ज्ञान होता है। अन्ततोगत्वा सद्गुरु के विराट् अखण्ड-मण्डलाकार परम-ज्योति में ही अन्य सत्ताओं का समावेश उसे दिखाई पड़ता है। साधकका अपना निजत्व भी उस परम-ज्योति में विलीन हो जाता है। सत्त्व प्रधान युग में मात्र सद्गुरु द्वारा इंगित कर देनेसे उस काल के जीव, जो अधिक मलार्णव से लिप्त नहीं होते थे, ईश्वरत्व का बोध प्रत्यक्ष पा जाते थे। प्रचेताओं को जिस समय प्रजापति ब्रह्मा ने सृष्टि सहयोग रूपी संस्कारों का सृजन करने का आदेश दिया, उसी समय तप हेतु जाते प्रचेताओं को ब्रह्मर्षि नारद ने मात्र उनसे यह पूछा था कि—क्या तुम अपने को जानते हो ? तुम यथार्थतः कौन हो ? मात्र इतना पूछने से ही प्रचेताओंको ब्रह्म जिज्ञासा तथा ब्रह्म-दर्शन एवं ऐक्य प्रदान कर दिया था, परन्तु कालान्तर में जीव गहन संस्कारों के कठिन मलार्णव से घिरता गया। अतः उस परम सत्ता को जीवोद्धार हेतु नाना साधना एवं उपासना-पद्धतियों का प्राकट्य लोकजन-हितार्थ करना पड़ा। अस्तु ! उपर्युक्त कथित सन्दर्भ में आगम एवं निगम में वर्णित गुरु-प्रतिष्ठा का भेद हमें दिखलाई पड़ता है। अतः ऋग्वेद के कुछ मंत्रों को देखें—

यो नोऽग्ने अररिवाँ
अघायुररातिवामर्चयति द्वयेन ।
मंत्रो गुरुः पुनरस्तु सोऽस्मा-
अनुमृक्षीष्ट तन्वंदुरुक्तैः ॥

तथा—

इमे तुरं मरुतो रामयन्तीमे-
सहः सहसानमिन्त ।
इमे शं सं मनुष्यतो निपान्ति
गुरु द्वेषो अररुषे दधन्ति ॥

ऋ० वे० मं० १ सूक्त १४७ तथा ७-५६

उपरोक्त मन्त्रों का भाव यह है कि—हे मन्त्र दाता सद्गुरु आप उन लोगों को अपनाकर पावन बनावें। जो सत्कर्म करने वालों के कार्यों में विघ्न डालते हैं, स्वयं दानादि सत्कार्य नहीं करते हैं तथा पाप निरत हैं। जो सत्कार्य करने वालों से द्वेष करते हैं, महापुरुषों की दुर्वचनों द्वारा निन्दा करते हैं, ऐसे लोगों को आप अपनाकर पावन करें।

साधक जो स्वयं मन्त्र दातागुरु की कृपा से समुज्वल जीवन जी रहा है। उसके हृदय में कितनी उदात्त भावना है। वह अन्य क्रूरकर्मी जीवों को सद्पथ दिखाने के लिये गुरु से प्रार्थना कर रहा है।

दूसरे मन्त्र में गुरुदेव के प्रभाव को वर्णित किया गया है। मन्त्र द्रष्टा का कथन है—गुरुदेव वायु के समान लोक कल्याण के लिये सतत् भ्रमण करते रहते हैं। अपनी सेवा में तत्पर शिष्य को परमानन्द का दान करते हैं। माता-पिता जिस प्रकार अपने बालक को प्रसन्नता के लिये खिलौने देते हैं, वैसे ही गुरुदेव हितकारी भोग सामग्री भी अपने योग बल से उसे प्रदान करते हैं। इतना ही नहीं अपितु शिष्य की जगत् पीड़ा कारी चोर और दस्यु से भी रक्षा करते हैं। अपनी दिव्य-शक्ति से कुमार्गी प्राणी वर्ग को सन्मार्ग की ओर ले चलते हैं। और भी अपने प्रति समर्पित शिष्य की बाहरी सिंह-सर्प-व्याधि तथा शत्रु के भय से तथा आन्तरिक शत्रु काम-क्रोध के विकार से सतत् बचाते रहते हैं। परन्तु आत्मनिवेदित न करने वाले ढोंगी शिष्य के लिये अप्रिय अनिष्ट (शापादि अथवा कठोर दण्ड) को भी गुरुदेव धारण करते हैं जिससे शिष्य सद्पथ पर आरूढ़ हो जावे।

इसी प्रकार अथर्व वेद में निम्न मन्त्र आया है—

मा नः पाशं प्रतिमुचो
गुरुर्भारो लघुर्भव: ।
वधूमिव त्वा शाके
यत्र कामं भरामसि ॥

उपर्युक्त मन्त्र का भाव स्वामी गंगेश्वरानन्दजी महाराज ने इस प्रकार किया है। हे परमात्मन् ! हे गुरो ! अब हमारी ग्रीवा में अविद्या की डोरी मत डालें। कृपया अपनी माया का हमारे फँसाने के लिये प्रसार न करें, अपितु आप अपने दिव्य विग्रह रूप में हमारे अन्तर में प्रतिष्ठित हों। हमारे पाप भार को हल्का करें। अनन्त जन्मों से हम माया में फँसकर संस्कारों के कठिन बोझ के

नीचे दबे जा रहे हैं। इस भार से हमें मुक्त करें। हम नव-विवाहिता नारी की तरह आपको वस्त्राभरण आदि से सत्कार करते हैं। जिस पूजन से हम साधक मनोवांछित मनोरथ को प्राप्त होते हैं।

उपनिषदों की संख्या अत्यधिक है। अतः कुछ प्रमुख उपनिषदोंमें सद्गुरु का जो स्वरूप बताया गया है, उसे हमें सतत् चिन्तन का विषय बना लेना चाहिए। यथा—तारको उपनिषद् में कहा गया है—

गुरुरेव परं ब्रह्म,
गुरुरेव परागतिः।
गुरुरेव परा विद्या,
गुरुरेव परायणम् ॥
गुरुरेव पराकाष्ठा,
गुरुरेव परं धनम्।
यस्मात्तदुपदेष्टासौ,
तस्माद्गुरुतरो गुरु ॥

अर्थ सहज है, साधक के लिए सद्गुरु ही सब कुछ है। इसी उपनिषद् में गुरु को शिष्य के अन्तःअन्धकार को हरने वाला बताया गया है। यथा—

गु शब्दस्त्वन्धकारः,
स्याद्रु शब्दस्तन्निरोधकः।
अन्धकार निरोधित्वाद्,
गुरुरित्यभिधीयते ॥

परन्तु साधक को साधना में तभी पूर्ण सफलता प्राप्त होती है, जब उसकी भावना सद्गुरु के प्रति मानवी भाव न होकर ब्रह्म भावना हो। जैसा कि श्वेताश्वरोपनिषद् में बताया गया है—

यस्य देवे पराभक्ति-
र्यथा देवे तथा गुरौ।
तस्यैते कथिताः ह्यार्थाः
प्रकाश्यन्ते महात्मनः ॥

ब्रह्म एवं सद्गुरु में भेद है ही नहीं, अतः ऐसी धारणा से ही शिष्य का परम-कल्याण साधित होता है। योग-शिखोपनिषद् का यही मत है—

यथा गुरुस्तथैवेशो,
यथैवेशस्तथा गुरुः।
पूजनीयौ महाभक्त्या,
न भेदो विद्यतेऽनयोः ॥

कठोपनिषद् तथा अन्य उपनिषदों में सद्गुरु की महिमा का बड़ा भारी गान किया गया है। बन्धन-मुक्त होने हेतु जीव को सद्गुरु शरणागति प्राप्त करना अनिवार्य बताया गया है। हमारे आर्ष-ग्रन्थमें अध्यात्म प्रतिष्ठा हेतु एकमात्र सिद्ध सामर्थ्यशाली गुरु की प्राप्ति को ही परम साधन बताया गया है।

जीवन बीता जा रहा है, हम पल-पल में मृत्यु की ओर बढ़ रहे हैं, बहुत ही जल्दी जीवन खत्म होगा, यह समझकर अगली यात्राके लिए यहांका काम निपटाकर सदा कमर कसे तैयार रहो। जगत् की आसक्ति सर्वथा त्यागकर परमात्मा से मिलने की तीव्र इच्छा करना ही कमर कसकर तैयार होना है।

—हनुमानप्रसाद पोद्दार

पत्रं-पुष्पं-फलं-तोयम्

गतिरात्मवतां सन्तः सन्त एव सतां गतिः ।
असतां च गतिः सन्तो न त्वसन्तः सतां गतिः ॥

जितेन्द्रिय पुरुषों की गति (आश्रय=सहारा) सत्पुरुष हैं, सत्पुरुष ही सत्पुरुषों की गति है, और असत्पुरुषों की गति भी सत्पुरुष ही है। किन्तु असत्पुरुष सत्पुरुषों की गति कभी नहीं होते।

जिता सभा वस्त्रवता मिष्टाशा गोमता जिता ।
अध्वा जितो यानवता सर्वं शीलवता जितम् ॥
शीलं प्रधानं पुरुषे तद्यस्येह प्रणश्यति ।
न तस्य जीवितेनार्थो न धनेन न बन्धुभिः ॥

उत्तमवस्त्रधारी सभा को जीत लेता है। मीठे की आशा=इच्छा को गौओं वाला जीत लेता है। यान वाला मार्ग को जीत लेता है। शील वाला सभी को जीत लेता है। इस संसार में पुरुष का शील ही मुख्य है, जिसका वह नष्ट हो जाता है, उसका न तो जीने का प्रयोजन, नहीं बन्धु से और न धन से उसे कोई लाभ।

अवृत्तिर्भयमन्त्यानां मध्यानां मरणाद्भयम् ।
उत्तमानां तु मर्त्यानामवमानात्परं भयम् ॥

आवृत्ति अभाव अन्त्यों=अधमों के लिए भय है। मध्यमों को मरण से भय होता है। उत्तम मनुष्यों को तो अपमान से बड़ा भय होता है।

क्षुद्राक्षेणेव जालेन झषावपिहितावुरू ।
कामश्च राजन् क्रोधश्च तौ प्रज्ञानं विलुम्पतः ॥

सूक्ष्म छिद्र वाले जाल से विहित (छिपाये हुए, फंसे हुए) बड़े मच्छ जैसे, जाल को नष्ट कर देते हैं। वैसे ही काम तथा क्रोध, हे राजन्! बुद्धि का लोप कर देते हैं।

असत्यागात्पापकृतामपापां स्तुल्यो दण्डः स्पृशते मिश्रभावात् ।
शुष्केणार्द्रं दह्यते मिश्रभावात्तस्मात्पापैः सह सन्धि न कुर्यात् ॥

पापियों का त्याग न करने से पाप रहितों को भी मिश्रता (मिले रहने) के कारण समान दण्ड मिलता है। मेल के कारण सूखे के साथ गीला भी जल जाता है, अतः पापियों के साथ मेल मिलाप न करें।

निजानुत्पततः शत्रून्पञ्च पञ्चप्रयोजनान् ।
यो मोहान्न निगृह्णाति तमापद् ग्रसते नरम् ॥

पाँच विषयों (शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध) की ओर जाने वाले, कुमार्गगामी, पञ्च इन्द्रियरूप पशुओं को जो नहीं दबाता है, अन्यायपूर्वक उधर जाने से नहीं रोकता है, विपत्तियाँ उस नर को ग्रस लेती हैं।

अनसूयार्जवं शौचं सन्तोषः प्रियवादिता ।
दमः सत्यमनायासो न भवन्ति दुरात्मनाम् ॥

अनसूया (ईर्ष्या न करना), आर्जव=सरलता, शौच=शुद्धि, सन्तोष, प्रियवादिता, दम=इन्द्रियजय, सत्य तथा अनायास=सहिष्णुता ये गुण दुष्टों के नहीं होते।

आत्मज्ञानमनायासस्तितिक्षा धर्मनित्यता ।
वाक् चैव गुप्ता दानं च नैतान्यन्त्येषु भारत ॥

आत्मज्ञान, अनायास, तितिक्षा, धर्म में तत्परता, सुरक्षित=संयत-वाणी तथा दान ये अन्त्यों=नीचों में नहीं होते।

हिंसा बलमसाधूनां राज्ञो दण्डविधिर्बलम् ।
शुश्रूषा तु बलं स्त्रीणां क्षमा गुणवतां बलम् ॥

हिंसा दुष्टों का बल है, अपराधी को दण्ड देना राजाओं का बल है। शुश्रूषा (पति-सेवा) स्त्रियों का बल है, क्षमा गुणियों का बल है।

अभ्यावहति कल्याणं विविधं वाक् सुभाषिता ।
सैव दुर्भाषिता राजन्नर्थायोपपद्यते ॥

सुभाषित=उत्तमता से बोली गई वाणी नाना प्रकार के कल्याण को प्राप्त कराती है। हे राजन्! दुर्भाषित वाणी अनर्थ का हेतु बनती है।

न सा सभा यत्र न सन्ति वृद्धा
न ते वृद्धा ये न वदन्ति धर्मम् ।
नासौ धर्मो यत्र न सत्यमस्ति
न तत्सत्यं यच्छलेनाभ्युपेतम् ॥

वह सभा नहीं जिसमें वृद्ध नहीं है, वे वृद्ध नहीं जो धर्म्म का कथन नहीं करते, और वह धर्म्म नहीं है जिसमें सत्य नहीं है, और वह सत्य नहीं है जो छल से विरहित नहीं है।

इन्द्रिय निग्रह और वैराग्य

❀ सन्त श्री ज्ञानेश्वर

इन्द्रियार्थेषु वैराग्य-
मनहंकार एव च ।
जन्ममृत्युजराव्याधि,
दुःख दोषानुदर्शनम् ॥

जिसके मन में विषयों के प्रति पूर्ण रूप से विरक्ति जाग्रत रहती है, वही ज्ञानी होता है। जिस प्रकार वमन किये हुए पदार्थ को देखकर किसी की जीभ से लार नहीं टपकती अथवा जिस प्रकार किसी मृत पुरुष को आलिंगन करने के लिए कोई आगे नहीं बढ़ता अथवा विष को कोई नहीं निगलता अथवा जलते हुए घर में कोई प्रवेश नहीं करता अथवा बाघ की गुफा में कोई अपना निवास-स्थान नहीं बनाता अथवा गले हुए लोहे के खौलते हुए रस में कोई नहीं कूदता अथवा अजगर को तकिया बनाकर उस पर नहीं सोता, उसी प्रकार विषय की बातें जिसे अच्छी नहीं लगती और जो इन्द्रियों के द्वारा किसी विषय का ग्रहण नहीं करता। जिसका मन विषयों की ओर से सदा उदासीन रहता है, जिसका शरीर अत्यन्त कृश रहता है और शम-दम के सम्बन्ध में जिसके सम्बन्ध में जिसके मन में बहुत अधिक उत्साह रहता है।

हे अर्जुन ! जिसमें समस्त तपोबल एकत्र रहते हैं और गाँव या नगर की भरी हुई बस्ती में रहना जिसे कालरात के समान दुःखद जान पड़ता है, जिसे योगाभ्यास की बहुत अधिक लालसा रहती है। जो निर्जन और एकान्त स्थान की ओर दौड़ता हुआ जाता है और मनुष्य के समाज का जिसे नाम भी बहुत अच्छा नहीं लगता।

जो ऐहिक विषयों के भोग-विलास को उतना ही बुरा और त्याज्य समझता है जितना बाणों की शय्या पर सोना अथवा पीब के कीचड़ में लोटना। जो स्वर्ग के सुखों का वर्णन सुनकर उन सुखों को कुत्तों के सड़े हुए मांस के समान समझता है। उसका यह वैराग्य ही उसके लिए आत्म-लाभ का वैभव होता है। इसी प्रकार के वैराग्य के द्वारा जीव ब्रह्मानन्द का सुख भोगनेका पात्र बनता है। इस प्रकार जिसमें ऐहिक और पार-लौकिक सुखों के उपभोग के सम्बन्ध में,तुम यह समझलो कि उसी में [-पुन ज्ञान निवास करता है।

जो किसी सकाम मनुष्य की भाँति ही कुएँ और घाट आदि बनवाने के सभी लोको-पयोगी काम करता है, परन्तु उसके कर्तृत्व का अभिमान अपने शरीर को छूने भी नहीं देता, जो वर्णाश्रम धर्म के पालन के लिए आवश्यक नित्य और नैमित्तिक कर्म किये बगैर नहीं रहता, परन्तु फिर भी जिसमें इस प्रकार की भावना तिलमात्र नहीं रहती कि मैंने अमुक कार्य सिद्ध किया है, वही सच्चा ज्ञानी है।

जिस प्रकार वायु अपने स्वाभाविक गुण के कारण सभी स्थानों में संचार करती है अथवा सूर्य अहङ्कार रहित बुद्धि से उदय होता है अथवा वेद सहज रूप से ज्ञान का कथन करते हैं अथवा गङ्गा बिना किसी हेतु

के ही सदा बहती रहती है। उसी प्रकार जो अभिमान रहित होकर सब प्रकार के आचरण और व्यवहार करता है, जो ठीक उसी प्रकार अहंभाव से रहित होकर नित्य कर्मों का आचरण करता है, जिस प्रकार उपयुक्त ऋतु आने पर वृक्ष फल तो देते हैं, परन्तु इस प्रकार का अहंकार पूर्ण ज्ञान उन्हें नहीं होता कि हम दूसरों को फल दे रहे हैं। इस प्रकार जिसके मन, कर्म और वचन में अहङ्कार का पूर्ण रूप से नाश हो जाता है, वही सच्चा ज्ञानी है। जिस प्रकार किसी हार को पिरोने वाली डोरी निकल जाती है अथवा आकाश में मेघों के इधर-उधर चलते रहने पर भी आकाश पर उन मेघों का दाग नहीं लगता, उसी प्रकार जिसके शरीर से कर्म तो हो जाते हैं, परन्तु फिर भी जो उन कर्मों से निर्लिप्त रहता है, जिस प्रकार मद्य-पान करने वाले को अपने शरीर पर वस्त्रों की अथवा चित्र को अपने हाथ में रखे हुए शस्त्र की अथवा बैल को अपनी पीठ पर लदे हुए शास्त्रीय ग्रन्थों की कुछ भी सुध नहीं होती, उसी प्रकार जिसका अहंभाव बिल्कुल व्यर्थ हो जाता है और उस अहंभाव का जिसे स्मरण भी नहीं रह जाता, उस पुरुष की इस स्थिति को निरहङ्कारता कहते हैं। जिस मनुष्य में इस प्रकार की निरहङ्कारता पूर्ण रूप से दिखाई देती है, उसी में ज्ञान का निवास होता है, इसमें तिलमात्र भी सन्देह नहीं। जो जन्म और मृत्यु आदि दुःखों को और रोग तथा वृद्धावस्था आदि संकटों को अपने शरीर में लगने नहीं देता और निर्लिप्त होकर उन सबको ओर देखता रहता है और वह भी किस प्रकार देखता है, जिस प्रकार कोई साधक पुरुष पिशाच को, योगी पुरुष उपाधि को अथवा साहूल की सहायता से मिस्त्री दीवार की सीध को बिना स्वयं अपने स्थानसे हटे हुए देखता रहता है, उसी प्रकार जो मृत्यु और रोग आदि को निर्विकार होकर देखता रहता है, जो अपने पिछले जन्म के दोषों का उसी प्रकार स्मरण करता रहता है, जिस प्रकार साँप अपने मन में पिछले जन्म का भी बैर बनाये रखता है और उसे किसी प्रकार दूर नहीं होने देता। जिसे पूर्व जन्म के दुःख आदि उसी प्रकार खटकते रहते रहते हैं जिस प्रकार आँखों में बालू का कण खटकता रहता है अथवा घाव में बाण की गाँसी खटकती रहती है और जो निरन्तर यही कहता है कि मैं पीब के गड्ढे में पड़ा था मूत्र-द्वार से मैं बाहर निकला था और हाय-हाय! मैंने स्तन पर का पसीना बड़े स्वाद से चाटा है और इन्हीं सब बातों का विचार करके जिसे जीवन से सदा घृणा बनी रहती है और जो अपने मन में इस बात का निश्चय कर लेता है कि अब मैं ऐसा काम कभी नहीं करूँगा जिससे मुझे फिर से जन्म धारण करना पड़े। जिस प्रकार गँवाया हुआ धन फिर से प्राप्त करने के लिए जुआरी फिर दाँव लगाने के लिए तैयार होता है अथवा अपने पिता के बैर का बदला चुकाने के लिए पुत्र सदा अवसर ढूंढ़ता

रहता है अथवा मारने से चिढ़कर जिस प्रकार कोई क्रोध पूर्वक मारने वाले का पीछा करता है और उससे उस मार का बदला चुकाना चाहता है, उसी प्रकार जो हाथ धोकर और आवेश पूर्वक जन्म का बन्धन तोड़ने के पीछे पड़ा रहता है अथवा जन्म-धारण करने की लज्जा जिसके मन में सदा उसी प्रकार खटकती रहती है, जिस प्रकार किसी प्रतिष्ठित पुरुष के मन में अपनी मान-हानि खटकती रहती है अथवा, हे अर्जुन, जब किसी तैरने वाले से यह कह दिया जाता है कि आगे बहुत गहरा गड्ढा है, उस समय वह तैरने वाला जिस प्रकार किनारे पर ही खूब अच्छी तरह अपनी लांग कस लेता है और जल में उतरने का विचार छोड़ देता है अथवा जिस प्रकार बुद्धिमान पुरुष रण में जाकर खड़े होने से पहले ही अपने होश-हवास ठिकाने कर लेता है अथवा घाव लगने से पहले ही जिस प्रकार ढाल आगे करना पड़ती है अथवा जिस प्रकार यह पता लगने पर कि प्रवास में कल हम जहाँ ठहरेंगे, वहाँ कोई भारी आपत्ति आने की सम्भावना है, मनुष्य एक दिन पहले से ही सावधान हो जाता है अथवा प्राण निकलने से पहले ही जिस प्रकार औषध के लिए दौड़-धूप करनी पड़ती है, इसी प्रकार जो यह समझकर तत्काल ही सावधान हो जाता है कि मृत्यु चाहे आज हो और चाहे कल्पान्त में हो, परन्तु वह होगी अवश्य, और यदि इस प्रकार मनुष्य पहले से ही सावधान न हो तो उसकी अवस्था उसी मनुष्य के समान हो जाती है जो जलते हुए घर में पड़ा रह जाता है और जिसे फिर उस समय कुआँ खोदने का अवसर ही नहीं मिलता और वह हटकर उसी तरह जहाँ का तहाँ रह जाता है जिस तरह गहरे जल में फेंका हुआ पत्थर चुपचाप पड़ा रह जाता है और किसी को उसकी पुकार भी नहीं सुनाई पड़ती और इसीलिए जो उसी प्रकार आठों पहर सावधान रहता है, जिस प्रकार वह पुरुष सावधान रहता है, जिसका किसी बड़े बलवान् के साथ बहुत प्रबल बैर हो जाता है अथवा जिस प्रकार विवाह के योग्य कन्या पहले से ही अपने मायके के वियोग के लिए तैयार हो जाती है अथवा संन्यास लेने वाला पुरुष पहले से ही संसार का त्याग करने के लिए तैयार रहता है, उसी प्रकार जो पुरुष मरने से पहले ही मृत्यु पर ध्यान रखकर अपने सब व्यवहार और आचरण करता है। और इस प्रकार जो पुरुष मरने से पहले ही मृत्यु पर ध्यान रख-कर अपने सब व्यवहार और आचरण करता है और इस प्रकार जो पुरुष अपने इसी जन्म से समस्त भावी जन्मों का और इसी जन्म में होने वाली मृत्यु से भावी जन्मों की मृत्यु का अन्त कर डालता है और स्वयं केवल आत्म-स्वरूप से बचा रहता है, उसके घर में ज्ञान की कोई कभी कमी नहीं रहती जिसके लिए जन्म और मृत्यु का कोई खटका नहीं रह जाता जिसके शरीर को वृद्धावस्था कभी स्पर्श नहीं करती और इसीलिए जो सदा

अपने आपको यौवनावस्था की उमंगों में ही रखता है, वही ज्ञान है। वह अपने आप से कहता है कि आज मेरे जिस शरीर में पुष्टि दिखाई देती है वह शीघ्र ही सूखी हुई ककड़ी के समान हो जायेगा। अभागे पुरुष के व्यवहार की तरह कभी न कभी ये हाथ पैर थककर व्यर्थ हो जायेंगे और इस बल की अवस्था ऐसे राजा के समान हो जायेगी, जिसे परामर्श देने वाला कोई मन्त्री नहीं होता। जिस मस्तक को आजकल फूलों का इतना शौक है, वही यह मस्तक शीघ्र ही ऊंट के घुटने के समान हो जायेगा। आषाढ़ मास की हवा लगने के कारण पशुओं के खुरों की रोगी होने से जैसी दुर्दशा हो जाती है, वैसी ही दुर्दशा मेरे इस मस्तक की भी होगी। आज जो मेरे ये नेत्र कमल की पंखुड़ियों के साथ स्पर्धा कर रहे हैं, परन्तु शीघ्र ही ये पके हुए चिचड़े के समान निस्तेज हो जायेंगे। ये भौंहों के परदे पुरानी छाल के समान लटकने लगेंगे और यह वक्षस्थल नेत्रों के जल से भीगकर सड़ने लगेगा। जिस प्रकार बबूल के पेड़ पर आने-जाने वाले गिरगिट गोंद से लिपटे रहते हैं, उसी प्रकार मेरा यह मुख भी थूक से लिपटा रहेगा। जिस प्रकार रसोई घर के सामने के गड्ढे गन्दे और राख के पानी से भरे रहते हैं, उसी प्रकार यह नाक कफ से भरी रहेगी। जिस मुख के होठों को मैं रँगता हूं, हँसते समय जिसमें के दांत दिखलाता हूँ और जिसमें मैं सुन्दर-सुन्दर बातें कहता हूँ, उसी मुखसे कल की लार-प्रवाह बहने लगेगा और सब दांतों के साथ-साथ दाढ़े भी गिर जायेंगी। जिस प्रकार ऋण के भार से दबे हुए कोतिहर अथवा बरसात की झाड़ी के कारण पशु चुपचाप दबे हुए पड़े रहते हैं और किसी प्रकार उठना जानते ही नहीं उसी प्रकार लाख प्रयत्न करने पर भी यह जीभ किसी तरह हिल अथवा उठ न सकेगी। जिस प्रकार सूखी हुई घास के फूले हवा के झोकों से जमीन पर इधर-उधर उड़ते रहते हैं, उसी प्रकार की दुर्दशा मुँह के अन्दर की दाढ़ों की होगी। जिस प्रकार आकाश की वर्षा के कारण पहाड़ियों के शिखरों पर से पानी के झरने बहते रहते हैं, उसी प्रकार मेरे मुँह की खिड़की में से लार की नदियां बहने लगेंगी। 'वाचा कुछ बोल न सकेगी,' कान बहरे हो जायेंगे और सारा शरीर बहुत बड़े बन्दर के समान दिखाई देने लगेगा। जिस प्रकार घास-फूस का बनाया हुआ और खेत में खड़ा किया हुआ पुतला हवा के झोकों से बराबर आगे और पीछे की ओर हिलता या झूलता रहता है, उसी प्रकार मेरा यह शरीर भी थर-थर कांपने लगेगा। चलने में पैर टेढ़े तिरछे पड़ेंगे, हाथ टेढ़े और बेकाम हो जायेंगे और तब मानो सौन्दर्य का एक बढ़िया स्वांग खड़ा होकर नाचने लगेगा। मल और मूत्र के द्वारों में निरोध की शक्ति नहीं रह जायेगी और सब लोग यही मानने लगेंगे कि मैं किसी तरह मर जाऊं जिससे उनका पीछा छूटे। सारा संसार मेरी ओर देखकर थूकने लगेगा, मृत्यु से बार-बार

कहना पड़ेगा कि तू किसी तरह जल्दी से आकर मुझे उठा ले जा और मेरे सगे सम्बन्धी भी मुझसे ऊब जायेंगे। स्त्रियाँ मुझे मृत कहेंगी और लड़के बच्चे मुझे देखकर घबरा और डर जायेंगे। और इस प्रकार मैं सबकी घृणा का पात्र बन जाऊँगा। कफ की प्रधानता होने पर जब मैं खों-खों करके खासूँगा, तब अड़ोसी-पड़ोसियों की नींद टूट जायेगी। और वह कहने लगेंगे कि यह बुड्ढा अभी न जाने और कितने लोगों को सतावेगा। इस प्रकार जो व्यक्ति युवावस्था में ही अपनी भावी वृद्धावस्था के लक्षणों का ध्यान रखता है और तब अपने मन में उन सब लक्षणों से घृणा करने लगता है, वही ज्ञानी है। वह अपने मन में कहता है कि अगर मैं शरीर की इस प्रकार की दुर्दशापूर्ण अवस्था होगी और शारीरिक भोगों को भोग चुकने के उपरान्त इस शरीर का अन्त ही जायेगा। तब हमने कल्याण का साधन करने के लिए मेरे पास बच ही क्या जायेगा? इसीलिए जब तक बहरापन न आवे, उससे पहले ही सब कुछ सुन लेना चाहिए और जब तक शरीर में पंगुता न आवे, तब तक सब जगह की यात्रा आदि कर लेनी चाहिए। जब तक नेत्रों में दृष्टि है, तब तक जो कुछ देखने बने वह देख लेना चाहिए और जब तक वाणी मूक न हो, तब तक मधुर भाषण कर लेना चाहिए। हमें यह बात अभी से अच्छी तरह मालूम हो गई है कि आगे चल-कर हमारे ये हाथ लूले हो जायेंगे। लेकिन उन हाथों के लूले होने से पहले ही दान आदि समस्त पुण्य कर्म इन हाथों से करा लेने चाहिए। आगे चलकर जब इस प्रकार की हीन अवस्था आवेगी, तब चित्त बिल्कुल पागलों के समान हो जायेगा। इसलिए ऐसी अवस्था आने से पहले ही शुद्ध ज्ञान का संग्रह कर लेना आवश्यक है। यदि आज हमें यह पता चल जायगा कि कल चोर आकर हमारी सारी सम्पत्ति लूट ले जायेगा, तो अच्छा यही है कि आज ही हम उसकी रक्षा की व्यवस्था कर लें। दीपक के बुझने से पहले ही उसे हवा से बचाने के लिए ढक देना चाहिए। जब वृद्धावस्था आवेगी, तब यह सारा शरीर व्यर्थ हो जायेगा। इसीलिए आज से ही इस शरीर से बिल्कुल निर्लिप्त होकर रहना आरम्भ कर देना ही उचित है जो यह जानता है कि आगे नाके बन्दी या रक्षा का प्रबन्ध नहीं है अथवा यह देखता है कि आकाश में मेघ घिर आये हैं। लेकिन फिर जो इन सब बातों की ओर ध्यान न देकर घर से बाहर निकल पड़ता है, उसका अवश्य ही घात होगा। इसी प्रकार जब वृद्धावस्था आवेगी, तब यह शरीर धारण करना बिल्कुल व्यर्थ हो जायेगा। ऐसी अवस्था में यदि मनुष्य की आयु सौ वर्षों की भी हो तो भी यह समझ में नहीं आता कि उसके इतने दीर्घजीवी होने से क्या लाभ है। जिन तिलों के डंठलों में से एक बार झाड़े जाने के कारण तिल निकल जाते हैं, वे डंठल यदि फिर झाड़े जाँय तो उनमें से तिल नहीं

पूर्व प्रकाशित से आगे—(२)

सर्वं खल्विदं ब्रह्म नेह नास्ति कदाचन्

❀ श्री जगदीशनारायण उपाध्याय

इसी अगली पंक्तियों में आये ज्ञान के विषय एवं अपने संकल्पित प्रश्न के आधार पर श्री कि सब प्राणियों के भीतर रहने वाली माया से रहित ज्ञान दीप्ति प्रकुलिता विवेक-ख्याति अवस्था का ज्ञान, साधक जैसे लोगों को मुक्ति दिलाने वाली है और साथ ही साथ उनके माध्यम से उनके जैसे अन्यों को भी मुक्ति दिलाने वाला है। इसे जानकर ही पिछले जन्मों में किये गये पूर्व मीमांसा-दर्शन निष्काम कर्मयोग कर्मकाण्ड (शरीर) विषय ज्ञान रखने वाले तथा अभीष्ट विषय 'उपासना काण्ड' व 'ज्ञान काण्ड' में उपयोग आने वाली ग्रहण ग्राह्य (अन्तःकरण और इन्द्रियाँ) व (पंचभूत और तन्मात्राओं) विषय का ज्ञान रखने वाले ऐसे योगनिष्ठ साधक, जिसका 'सोऽहं या अस्मिता' ज्ञान, विचार वात बुद्धि से ऊपर उठकर आत्मा-परमात्मा से युक्त होकर सहज स्वभाव में 'वृत्ति सारूप्य मितरत्र' सा मिलकर 'वृत्ति या निश्चयात्मक बुद्धि' में अब भी इस जन्म में बना है। गीता में ऊपर कहे गये भगवान् श्रीकृष्ण के निष्कर्ष पूर्ण वचनों, उपनिषदों के आये वाक्यों एवं श्रीमद्भगवद् गीता के निम्नलिखित श्लोक—

आरुरुक्षोर्मुनेर्योगं
कर्म कारणमुच्यते।
योगारूढस्य तस्यैव
शमः कारणमुच्यते॥

—गीता ६/३

हे अर्जुन! "समत्व बुद्धि रूप योग में आरूढ़ होने की इच्छा वाले मननशील पुरुष के लिए प्रथम श्रद्धा, विश्वासके साथ निष्काम भाव से आत्म-समर्पण द्वारा कर्म करना ही

निकलते। अग्नि भले ही हो, परन्तु वह राख को नहीं जिला सकती। इसीलिये जब एक बार वृद्धावस्था आ जाती है तब उस मनुष्य के हाथसे कुछ भी नहीं हो सकता, जिसकी आयु सौ वर्षकी होती है। इसलिये जो मनुष्य सदा यह स्मरण रखता है कि वृद्धावस्था आने वाली है और यौवन-काल में ही इस बात का प्रयत्न करता है कि मैं उस वृद्धावस्था के हाथों में न पड़ने पाऊँ, उसी पुरुष के सम्बन्ध में यह समझना चाहिए कि इसमें सच्चा ज्ञान है। जब तक नाना प्रकार के रोग सामने आकर खड़े नहीं हो जाते, तब तक वह अपने इस नीरोग शरीर का पूरा-पूरा उपयोग कर लेता है। जिस प्रकार साँपके मुँह से अन्न की उगली हुई गोली बुद्धिमान पुरुष दूर फेंक देता है, उसी प्रकार ज्ञानी पुरुष भी वह सारा ऐहिक ममत्व दूर फेंक देता है, जिसके वियोग से दुःख, संकट और शोकादि का पोषण होता है और वह आत्म-सुख से पूर्ण होकर तथा निस्पृह होकर रहता है। कर्मों के जिन द्वारों से होकर दोष इस शरीर में प्रवेश करते हैं, उन सब द्वारोंको वह यम-नियमोंकी सहायता से बिल्कुल बन्द कर देता है। इस प्रकार जो बहुत युक्ति से और सावधान होकर सब काम करता है, केवल उसी को ज्ञानरूपी सम्पत्ति का स्वामी समझना चाहिए।

योगारूढ़ होने के लिए श्रेयस्कर है। योगारूढ़ हो जाने के अनन्तर शुद्ध हो जाने पर, ज्ञान-दीप्ति प्रकाशिता सप्तधा ज्ञान से समस्त बुद्धि रखते हुए सभी कर्मों का त्याग करना ही मुक्तिका कारण या हेतु है'' के अनुसार ही—पिछले लेखोंमें प्रतीक व प्रतिबिम्ब के माध्यम से वर्णन किया गया हमारे निष्काम कर्मयोग 'आत्म-समर्पण' ज्ञान का विषय है। योग-वाशिष्ठ के अनुरूप दर्शाया गया उपासना-काण्ड स्वआश्रित, स्वामी शक्ति स्वरूप गुरु सद्गुरु सत्ता का विषय व सुख-दुःख के हान उपाय के रूप में कर्तापन-भोक्तापन के भाव उसके प्रति हटाने का विषय है और इसी तरह अन्त में उसके आगे आप-असम्प्रज्ञात समाधि, विवेक-ख्याति सप्तधा-प्रज्ञा (ज्ञान-काण्ड) का विषय है। इसी कारण पिछले लेखों में संप्रज्ञात समाधि योग-निष्ठ को योग का साधन न मान करके कार्यक्षेत्र असंप्रज्ञात समाधि योग द्वारा 'उपासना-काण्ड व ज्ञान-काण्ड' विषयक ज्ञान को पुनः क्रियान्वित करने के लिए तथा स्वतः अष्टांग योग के आंतरिक अनुशासन (धारणा, ध्यान, समाधि) तथा ज्ञान योग के आन्तरिक अनुशासन (शुभेच्छा, विचारणा, तनुमानसा, सत्वापत्ति, असंसक्ति, पदार्थ भावना, तुर्यगा) सप्तधा ज्ञान द्वारा ध्यानमें आरूढ़ होनेके लिए साधक ने महत्तत्त्व के रूप में पहले से ही संयुक्त एक परमात्मा चेतन तत्त्व के साथ ही साथ पाँचों तन्मात्राओं अहङ्कार और चित्त कुल मिला कर सात जड़ तत्त्वों को मान लिया है।

भारतीय योग-दर्शन के इसी अद्वैत सिद्धांत की यह जड़ तत्त्वों के साथ भगवान् 'शिव' के रूप में एक चेतन तत्त्व 'महत्तत्त्व' है। ऊपर पुरुष-प्रकृति के सम्बन्ध में भगवान् श्रीकृष्ण द्वारा सबसे ऊपर कही हुई अद्वैत सिद्धान्त ''प्रकृति पुरुष से परे एक सर्व व्यापक मायोपाधि मूर्ति-रहित अव्यक्त और अमृत तत्त्व है, जो क्षर-अक्षर का मूल है'' के अनुसार एवं ऊपर आई हुई उपनिषद् के वाक्योंके अनुसार ही पिछले लेखों में साधक ने—मूल प्रकृति में रहने वाले भेद के महान् पुरुष, सत्य स्वरूप, विज्ञान स्वरूप, आनन्द स्वरूप ''शुद्ध सच्चिदानन्द स्वरूप'' परब्रह्म परमात्मा 'शिव' के बाह्य प्रकाश को अपने साधन के रूप में सबसे पहले अपने संकल्पों के अनुसार पुरुष विशेष ईश्वर-मूर्ति के रूप में कामना से स्वीकार कर लिया है।

इसी भागवत धर्म के पालन के लिए ही अध्यात्म-विद्या का अभ्यास करने वाले साधक ने पिछले लेखों में सांख्यवादियों के द्वैत-प्रकृति और पुरुषके सृष्टि-रचना सिद्धांत के नाम रूपात्मक दृश्य प्रकाश को जो प्रत्यक्ष दीखने वाली, द्वैती, परिणामवादी, प्रवृत्ति ज्ञानोन्मुखी, स्वयंभू एवं स्वतन्त्र, सगुण व नश्वर क्षर (व्यक्त)-अक्षर (अव्यक्त) है, जो कुसंस्कारी पर-भावित अविद्या गुण प्रधान भौतिक जगत् को देखकर की गई इन्द्रिय अनुभव ज्ञान एवं व्यवसायात्मिका बुद्धि पर आश्रित है। उसे 'चित्तवृत्ति निरोध' के लिए धारणा व ध्यान के रूप में पहले न स्वीकार

करके—उसके पहले उसने उनके इस नाम रूपात्मक क्षर (व्यक्त)-अक्षर (अव्यक्त) द्रष्टा-दृष्टि प्रकाश से परे सृष्टि के क्लेश, कर्म, विपाक और आशय रूपी सारे कर्म सम्बन्धों से अस्पृश्य और अलग मायोपाधि मूर्ति-रहित अदृश्य रूप से रहने वाली 'सांख्यो' की क्षर-अक्षर सृष्टिका अवशेष अंश, सृष्टिका मूल—'अद्वैत', अपरिणामी, नित्य, अविनाशी अमृत एवं स्वतन्त्र 'सूक्ष्म चैतन्य भूत' चेतन पुरुष के रूप में 'पुरुष विशेष ईश्वर' परब्रह्म परमात्मा 'शिव' के 'महत्तत्त्व या शिवतत्त्व' के आगे बाह्य दृश्य 'प्रकाश' को यौगिक साधना के लिये मान लिया।

वर्ण, जाति, राष्ट्र, धर्म आदि विभेद बुद्धि से अलग व दूर भेदाभेद विवर्जित, न्याय वैशेषिक मीमांसा-दर्शन के इसी चैतन्य आत्म-तत्त्व (ज्ञान) या अध्यात्म तत्त्व (ज्ञान) को। सम्पूर्ण मानवतावादी दृष्टिकोण से न्याय व समानता के आधार पर वेदान्त भाव द्रष्टा भारतीय ऋषिगण के अनुसार—ज्ञानयोग, भक्तियोग व निष्काम कर्मयोग के समन्वय पर आधारित राजयोग प्रणाली "यत्र प्राणो लीयते, तत्र मनो लीयते" द्वारा "प्रच्छर्दन विधारणाभ्यां वा प्राणस्य" जैसे वैज्ञानिक उपाय जोड़कर उसे व्यावहारिक रूप देने व भागवत् धर्मपालन करने के लिए ही—पिछले लेखोंमें मुमुक्षु योगनिष्ठ साधक ने ऊपर सबसे पहले दिये गये गीता व वेद के 'अद्वैत' वेदांत सृष्टि रचना के प्रति पाद्य विषय पर निर्भर (क्षर-अक्षर, पुरुष-प्रकृति से परे) दैवी संपत्ति गुण वाले मायाधिपति भगवान् 'शिव' की माया पर अवस्थित 'महत्तत्व या अस्मिता शक्ति' के रूप में गुणों की साम्यावस्था में सृष्टि के अनादि काल से साधक जैसे लोगों को मुक्ति दिलाने के लिए रहते चले आये—'विद्यागुण प्रधान' सूक्ष्म चैतन्य भूत 'वृत्ति सारूप्यमितरत्र' के प्रकाश को अपनी सतो-गुण प्रकृति के अनुसार, 'वृत्ति या निश्चयात्मक बुद्धि' के दायरे के भीतर 'क्लेश, कर्म विपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुष विशेष ईश्वरः' या विराट् चैतन्य तत्व, स्थूल जगत् 'शबल ब्रह्म' के रूप में 'धारणा सु च योग्यता मनसः' (यद० २/५३) के अनुसार—धारणा के लिए अन्तः प्रकृति में निवृत्ति ज्ञान के लिए मान लिया है।

उसके बाद इसी प्रकार इस लेख के पिछले खण्डमें दिये गये विषय की तरह पिछले लेखों में इसे जोड़ने के लिए पुरुष-प्रकृति के स्वामी के रूप में आये ऊपर के तत्वों से जुड़े सद्गुरु के आत्म प्रकाश 'तदर्थ एव दृश्यात्मा' के प्रकाश के हिरण्यगर्भ (चेतन तत्व + सूक्ष्म जगत) के रूप में अन्तः प्रकृति में धारणा के लिए 'बुद्धि' के दायरे के भीतर द्वैतवादी सांख्य कारकों के सिद्धान्त के अनुसार प्रवृत्ति ज्ञान के लिये मान लिया है।

अन्त में इसी प्रकार इसके बाद पहले से ही ऊपर के तत्त्वों से जुड़े स्वशक्ति व स्वामी-शक्ति पुरुष-प्रकृति के स्वामी सद्गुरु या ईश्वर के प्रकाश को भी 'मनो मदं पुरुषः' की तरह ईश्वर (चेतन-तत्त्व + कारण जगत्) के मन के रूप में सूक्ष्म अन्तःकरण या सूक्ष्म मन के

दायरे के भीतर ध्यान के लिए विशिष्टाद्वैत सिद्धान्त के अनुसार 'स्वर्ग की कामना' से पिछले में मान लिया है।

सुख-दुःख के हान उपाय के रूप में आगे पिछले लेखों में इसी आध्यात्मिक तत्त्वों के कारण ही आगे चलकर साधक "क्षीणवृत्तेरभिजातस्येव मणेर्ग्रहीतृ ग्रहण ग्राह्येषु तत्स्थतदञ्जनता समापत्तिः" (पाद १/४१) के अनुसार वह असम्प्रज्ञात समाधि में ग्रहीता, ग्रहण, ग्राह्य विषय की समाप्ति कर सका है, जिसके कारण ही उसे उसे 'तदभावात्संयोगाभावो हानं तद्दृशेः कैवल्यम्।' अविद्या के अभाव से संयोग का अभाव हुआ है, यही सुख-दुःख के 'हान' के उपाय के रूप में पुरुष का कैवल्य है। उसके आगे असंप्रज्ञात समाधि द्वारा साधक ने 'विवेकख्यातिरविप्लवा हानोपायः।' निर्मल अडोल अर्थात् संशय विपर्यय रहित शुद्ध विवेक ख्याति उपाय लिया है। जिसके कारण ही 'तस्य सप्तधा प्रान्त भूमिः प्रज्ञा' (पा० २/२७)। उस विवेक ख्याति की सात प्रकार की सबसे ऊँची अवस्थाओं वाली प्रज्ञा को प्राप्त कर सका है और अन्त में आगे चलकर उसी के कारण साधक "योगाङ्गानुष्ठानाद् शुद्धिक्षये ज्ञानदीप्तिराविवेकख्यातेः।" (पाद २/२८) सर्वोच्च अवस्था का ज्ञान प्राप्त कर सका है। जिस अनुष्ठान से अशुद्धि का नाश होने पर साधक का ज्ञान-विवेक-ख्याति पर्यन्त हो जाता है और योग के आठ अङ्गों के अनुष्ठान से क्लेश रूपी अशुद्धि दूर होती है, सम्यक् ज्ञान प्रकाश बढ़ता है। जिसके कारण योग का अगला अनुष्ठान प्रज्ञा-समाधि एकाग्र चित्त में ऋत-म्भरा प्रज्ञा (विवेक-ज्ञान) उत्पन्न होती है, जिससे वस्तु का यथार्थ स्वरूप ज्ञात होता है, उसके अभ्यास से पर-वैराग्य और पर-वैराग्य से निर्बीज समाधि की प्राप्ति होती है।

अध्यात्म विद्या का अभ्यास करने वाले योगनिष्ठ साधक यदि क्रियात्मक रूप से देखें तो त्रिगुणात्मिका माया या दैवी सम्पत्ति-गुण मायाके प्रभाव से स्फुलिंग की तरह 'निश्चयात्मक बुद्धि या वृत्ति' के भीतर रहने वाली "विशेषाविशेष लिङ्गमात्रालिङ्गानि गुणपर्वाणि" (पाद २/१९) के रूप में यह आध्यात्मिक तत्त्व ज्ञान या अध्यात्म विद्या, सत्य स्वरूप, विज्ञान स्वरूप, आनन्द स्वरूप है, सच्चिदानन्द स्वरूप है। अद्वैत, अखण्ड, अनित्य, अनादि, अभेद, निरत्ने, निराकार 'ब्रह्ममय' है। कारण (चेतन पुरुष), कार्य (जड़ प्रकृति) को जोड़कर परब्रह्म परमात्मा 'शिव' का ज्ञान कराने वाली है तथा मानव जाति को सुख-दुःख, लाभ-हानि, जन्म-मृत्यु, ईर्ष्या-द्वेष से मुक्ति दिलाने वाली है।

एक साधना—देह दुःख सब, छूटें भ्रमित द्वैत मिटा दें।
तन, मन, प्राण शून्य में लय हों, बुद्धि-भेद जगजाल हटा दें॥
ब्रह्म सत्य, जग मिथ्या, जीवन नश्वर, यह अब उक्ति बदल दें।
ब्रह्म सत्य, जग स्फूर्ति समझकर जीवन सत्य सुशोभन गा दें॥ —श्री पूर्णचन्द्र

जीवन यज्ञमय बनायें

⚘ श्री सुशीला

बचपन से मैंने घर में यज्ञ होते देखा था। छोटी-छोटी लकड़ियाँ जलायी जाती। पुरोहितजी आते और माता-पिता एक साथ पूजन के लिए बैठते। पुरोहितजी के निर्देश के अनुसार यज्ञाग्नि में घी तथा अन्य कुछ सुगंधित-द्रव्यों की आहुति देते। इस यज्ञाहुति की सुगन्ध घर में बिखर जाती। हर उत्सव पर ऐसी अग्नि घर में आलोकित हो जाती। अनेक कथा-कीर्तनों का आयोजन, पास-पड़ोस में जगह-जगह सामूहिकरूपेण हुआ करता, जिनमें हम सब, बच्चे, बड़े, बुजुर्ग शामिल होकर भगवत्प्रसाद से मुँह मीठा करते। अकाल आदि संकट के समय भी भगवान को पुकारने के लिए यज्ञाग्नि ही जगह-जगह जलायी जाती थी। इस यज्ञाग्नि से चित्त का वातावरण और समाज का वातावरण, शुद्ध होने की प्रक्रिया निरन्तर जारी रहती।

गाँधी ने देश की स्वतन्त्रताके लिए जीवन की आहुति देने की दीक्षा दी और हाथ में दिया अहिंसा और प्रेम का प्रतीक, शस्त्ररूप में—चरखा। चरखे पर सूत कातने को सूत्र-यज्ञ नाम प्रचलित हुआ। बापू ने गीता के चौथे अध्याय में बताई हुई यज्ञ-प्रक्रिया की व्याख्या करते हुए सत्याग्रह का विचार समझाया कि यज्ञभावना से एक जगह बैठकर चरखा काता जाये तो एक ही जगह से वह भारत के सात हजार गाँवों में फैल जायेगा। और इस तरह भारत का गाँव-गाँव स्वावलम्बी बनकर उठ खड़ा होगा और विदेशी सल्तनत को प्रेम से बिदाई दे सकेगा।

गीता के तीसरे अध्याय में सम्पूर्ण सृष्टि को ईश्वर का यज्ञ-कार्य बताया है। मनुष्य को अपने जीवन-धारण के लिए सृष्टि माता सब सामग्री देती है। इसलिए उसकी सेवा करके सृष्टि को वापस दिये बिना भोग करने वाले को गीता ने 'चोर' कहा है। विनोबाजी ने गीता-प्रवचन में यज्ञ-कर्म की व्याख्या ही यह कर दी कि सृष्टि की सेवा करके उसे वापस देना ही यज्ञ है। इस तरह खेती आदि सब शरीर-परिश्रम का कार्य, यज्ञ-कर्म के रूप में करना हर मनुष्य का कर्तव्य हो जाता है। बीज अपनी आहुति देता है, मिट जाता है, धरती माता को समर्पित हो जाता है, तो एक बीज से अनेक दाने, फल आदि 'सृष्टि-माता से मिलते हैं। वैसे ही हमारा कर्मबीज सृष्टिमाता को समर्पित होगा तो वह यज्ञकर्म धन-धान्य से हमारा जीवन समृद्ध करेगा, यह सृष्टि का नियम है।

आज के युग में मनुष्य-मनुष्य के बीच संघर्ष, जीवन-धारण के लिए है। मनुष्य श्रम न करके उपभोग चाहता है, अपने और अपने परिवार के सीमित दायरे तक उपभोग की दृष्टि रखता है।

१८ अप्रैल १९५१ को जब तेलंगाना के क्षेत्र मे विनोबाजी को प्रथम भूदान, स्वतः स्फूर्त अपने गाँव के बन्धुओं के लिए प्रेम-प्रतीकरूप प्राप्त हुआ तो इस प्रक्रिया को भी भूदानयज्ञरूप से समाज ने अपनाया और यह प्रक्रिया विनोबाजी की तेरह साल की भारत-व्यापी पदयात्रा में चलती ही रही। समाज में रहने वाले के हाथ में जमीन रखना,

सामाजिक प्रतिष्ठा का विषय बन गया था, उसके स्थान पर अपनी मिलकियत छोड़कर अपने गाँव की जमीन पर मेहनत करने वाले अपने गाँव परिवार के बन्धुओं को मेहनत का साधन देना, सामाजिक प्रतिष्ठा का विषय हो गया और गाँव-गाँव में भूदान की गङ्गा बहकर जन-मानस को यज्ञ-भावना से पवित्र करने लगी। आज के युग की माँग है, समता, साम्ययोग। अब मनुष्य मनुष्य के जीवन में विषमता टिक नहीं सकती है। टिकेगी तो अशांति बढ़ते-बढ़ते सर्वनाश के कगारे तक पहुँचा देगी। भूदानयज्ञ के जरिये समाज के क्षितिज पर साम्ययोग के प्रभात के सूर्य रूप में एक अत्यन्त शुभदर्शन हुआ है।

द्रष्टा पुरुष समाज के अभ्युदय के लिए शुभदर्शन करा जाते हैं। अब हमें सोचना है कि हम शान्ति का प्रकाश चाहते हैं या अन्धकार में ही रहेंगे? अगर प्रकाश चाहते हैं तो हमारा जीवन, यज्ञमय बनायें, मिलकियत का विसर्जन गाँव-परिवार को कर दें और गाँव में सब मिलकर सृष्टिमाता की सेवा करें, प्रसादरूप में जो मिले वह सब बाँट कर भोग करें। भूदानयज्ञ में जो मार्ग हमारे लिए प्रस्तुत हुआ है, वह त्याग-तपस्या का उतना नहीं, जितना भोग का, आनन्द का, प्रेम का और शांति का राजमार्ग है। हँसते, खेलते इस मार्ग को अपना लें, हाथ में हाथ पकड़कर हम एक-दूसरे को गले लगा लें। गाँव में हर परिवार के पास थोड़ी जमीन, एक चरखा और एक गाय हो जाये तो गाँव-गाँव शासन-निरपेक्ष बनकर अपने पाँव पर खड़ा होकर आण्विक युद्ध के प्रभाव से अछूता, निर्भय हो सकता है। सारी दुनिया को शांति का मार्ग बताने में अगुआ हो सकता है।

विनोबाजी जब भूदानयज्ञ की हवा से समाज-हृदय को आलोकित करते घूमते थे तब लाखों एकड़ जमीन का प्रेम से बंटवारा हुआ। जमीन पर मिलकियत विसर्जन करने वाले दानपत्रों के ढेर लग जाते थे। बिहार, तमिलनाड वगैरह प्रदेशों में कुछ जिले तो पूरे के पूरे ग्रामदान में आ गये। लेकिन यह तो कार्यारम्भ मात्र है। इस कार्य की पूर्ति होने की दिशा में हमारे चित्त को ही बदलना होगा। पैसे की मिलकियत से हम मालिक बन बैठे हैं। इस मिलकियत के बोझ की गठरी को हम जितनी जल्दी खोलकर समाज को बाँट देंगे, एक परिवार की जगह पूरे समाज के संरक्षक, माँ-बाप बन जायेंगे, तो प्रेम की मिठास का ऐसा स्वाद लेंगे जो दूसरों को भी लुभायेगा और वह रंग चढ़ते-चढ़ते सारा समाज इस रंग में एक दिन डुबकी लगायेगा, ऐसी श्रद्धा रखकर अपनी शक्तिभर हमें कदम बढ़ाते चले जाना है।

भारत की सांस्कृतिक परम्परा में समाज को जीवन समर्पित करके, समाज से प्राप्त भिक्षा पर जीवन जीने वाले, द्वार-द्वार जा कर समाज को जगाने वाले साधु-सन्त होते आये हैं। लेकिन एक होता है युगधर्म! जब जंगल बहुत थे तब लकड़ी काटकर निवास के लिए जगह खाली करना युगधर्म था। युगधर्म सर्वसामान्य समाज को अपनाना होता

है। उस जमाने में लकड़ी काटकर हर घर में यज्ञकुण्ड रखने का रिवाज हो गया। वैसे आज का युगधर्म है—साम्ययोग।

बैर न कर काहू सन कोई,
राम प्रताप विषमता खोई।

समाज में रामराज्यरूपी सूर्य को उदय होना है, विषमता के अन्धकार को जाना है। यह रामराज्य लाने का समाज में हर व्यक्ति का धर्म हो जाता है। हर घर में यज्ञकुण्ड हो और घर का हर व्यक्ति अपना अपना हविर्भाग अर्पण करें। घर के लिए रसोई पकाते समय, निकाले हुए धान्य में से बच्चे के हाथ से एक मुट्ठी धान्य व्यापक समाज के लिए दानरूप में निकाल कर सर्वोदयपात्र में रखा जाये और इस धान्य का उपयोग समाज-परिवार में निःस्वार्थ से सबके हित में, प्रेम से शान्ति की हवा बनाने में हो। धरतीमाता, गोमाता, तकली-माता की प्रतिष्ठा घर-घर हो। इस नित्य यज्ञ-कर्म से अपना चित्त, घर, पड़ोस और समाज का हृदय प्रकाशित हो, पापरूपी विषमता का कलुषरूप अन्धकार मिटता जाये। हम सबको यज्ञमय जीवन की दिशा में अपना जीवन-प्रवाह मोड़ने का आज से ही प्रारम्भ कर देना चाहिए।

बाबा जब घूमते थे, तब हम देखते थे, कितनी जमीन मिल रही है, क्या परिणाम हो रहा है। लेकिन बाबा तो कहते थे कि यह भूदान प्राप्त करना-करवाना, देना-दिलाना तो कचरा उठाने का काम है। एक कहानी सुनाते थे कि एक आदमी आकाश से नीचे गिरा और धरती पर अन्धकार देखकर उस अन्धेरे को कचरे की तरह उठा-उठा कर फेंकने लगा। कितना भी फेंका, तो भी कचरारूपी अन्धकार समाप्त होता ही नहीं था। इतने में कोई दूसरा व्यक्ति वहाँ पहुंचा, लालटेन लेकर, तो तुरन्त सब तरफ प्रकाश हो गया और कचरा उठाने की मेहनत किये बगैर साफ स्वच्छ प्रकाश दीखने लगा। वह आदमी आश्चर्यचकित हो गया और बिना मेहनत प्रकाश का आनन्द लूटने लगा। बाबा कहा करते थे कि एक दिन आयेगा जब मिलकियत पाप का बोझ है, ऐसा महसूस होने लगेगा, तब एक-एक गाँव जाकर दान बटोरने का श्रम भी किसी को नहीं करना पड़ेगा एक ही दिन में जैसे सब गाँवों में दीवाली मनायी जाती है, वैसे मिलकियत का बोझ पटकने के लिए अपने-अपने ही गाँव में एक दिन सब उत्सव मनायेंगे।

१८ अप्रैल के भूदान-यज्ञ के आरम्भ के पावन दिन पर हम अपने चित्त में से मिलकियत की भावना की आहुति देकर जीवन यज्ञमय बनायें। अपने हृदयासन पर विश्व में व्यापक परमात्मा को अधिष्ठित करें। और आनन्दमय यात्रा के रूप में जीवन का आनन्द लेते हुए आगे ही आगे बढ़ते जावें। इस युग के 'साम्ययोग-दर्शन' को साकार करने में हमारा हविर्भाग हम देंगे, ऐसा पक्का निर्णय चित्त में हो जावे तो परमात्मा सृष्टि और समाज तीनों के साथ एकरूप होकर हम समुद्र में बूंद की तरह मिलकर समुद्र का ऐश्वर्य भोग सकते हैं। समुद्र से उसकी बूंद अलग रहती है, तो सूख जाती है। समुद्र में मिल जाती है तो उसे अनादि, अनन्त जीवन के अमरत्व की प्राप्ति होती है।

卐

श्री नानकदेव द्वारा—

नाम जप साधना का प्रभाव

※ श्री डा० विजयसिंह

गुरु नानकदेवजी की अनन्यतम साधना का बीज अहर्निश नाम जप रहा है। नाम जप ही धारणा है, वही मनोगत होने पर ध्यान है। नाम की प्रगाढ़ता बुद्धिगत होकर सम्प्रज्ञात समाधि को उजागर करने वाला है। नाम केवल मन्त्र जपमात्र नहीं है। नामी के साथ सर्वकाल सम्बन्ध बनाने वाला साधन है। हर साधक को परम उत्साह और उमंग से भरकर नाम-रंग में रमने का प्रयास करना चाहिए। श्री नानकदेवजी का कथन है—हमें निरन्तर ईश्वर के अस्तित्व का अपने अन्तःकः में विराजने का भाव लाना होगा। मेरे अंदर वे हैं, हैं, हैं। ऐसा सर्वकाल चित्त में धारण करने से माया मल हट जाता है तथा उनके होने का प्रत्यक्ष प्रमाण अन्त में प्रकट होता है। साधना इसी भाव को नैरन्तर्य और स्वाभाविक रूप में प्रकट करने के लिए है। जब नाम स्वतः हर श्वास में प्रकट हो तथा प्रतिपल उस अखण्ड सत्ता का बोध विराजमान हो, तब समझना कि परमेश्वर को कुछ जाना है।

उपरोक्त कथन के सन्दर्भ में भगवान् पतंजलिजी महाराज के योग-सूत्र विचारणीय हैं। प्रथम, "ईश्वर प्रणिधानाद्वा" अर्थात् अपने सम्पूर्ण चेतना को ईश्वर में समर्पित करने से ईश्वर बोधरूपी समाधि प्राप्त होती है। प्रणिधान के लिए सर्व प्रथम जिसको प्रणिधान करना है, उसे उस सत्ता के विराट् अस्तित्व को पूरी तरह अपने लघु अन्तःकरण में पूर्ण मानसिकता के साथ स्वीकारना होगा अन्यथा प्रणिधान सफल नहीं होगा। जैसाकि गुरु नानकदेव ने अपने अनुभूत सत्य को प्रकट किया है। दूसरा—उपाय प्रत्यय वालों के लिए—"तज्जपस्तदर्थ भावनम्" ईश्वर के पवित्र ओंकार, निराकार, निरंजन किसी नाम का अर्थ बोध से नाम सूत्र जप करना बताया गया है। तीसरा—"स तु दीर्घकाल नैरन्तर्य सत्कारासेवितो दृढ़भूमिः"। साधक अभ्यास को उत्साहपूर्वक, दीर्घकालिक बिना अन्तराय के तथा श्रद्धापूर्वक जप करता है तो उसे आप्लावित आत्म स्थिति प्राप्त हो जाती है। नानकजी का कथन है—काल क्षण-क्षण करके व्यतीत हो रहा है, पर एक सतत् धारा के रूप में अनुभव होता है, इसी प्रकार हमें ईश्वर को याद करना चाहिए, प्रति पल की याद ही आगे अविरल धारा बन जायेगी। जैसे धनी व्यक्ति को अपने धनका ज्ञान लगातार रहता है, उसी प्रकार ईश्वर के अस्तित्व का अभ्यास निरन्तर करने से ज्ञान-रूप में उदय हो जाता है। अस्तित्व बोध का अपना आनन्द है। 'है' का ज्ञान होते ही हमारा अन्तःकः उच्च भाव में रंग जायेगा। नाम क्या है? नानकजी के मन्तव्य में इस सारी

क्रिया जो ध्यान को इष्टमान से उठाने और द्रष्टा में लगाने में व्यय होता है; 'नाम' कहते हैं। यह ध्यान ईश्वर की ओर से प्यार, आनन्द, तरंग (आनन्दानुगत समाधि द्रष्टव्य) दया, करुणा साधक को प्राप्त कराता है। अतः ईश्वर की ओर पहला कदम ईश्वर की लालसा है। इधर-उधर भटकने से अच्छा अपने अन्दर झाँकना है। ईश्वर विशुद्ध सौन्दर्य है अतः उसकी अपने अन्दर आवाज लगाते रहना है, ऐसा उसका स्मरण 'नाम' कहलाता है। नानकदेव का कथन है—किन्हीं शब्द विशेष को नाम नहीं कहते हैं। नाम क्रिया है, नाम परमेश्वर का नाम है। नाम परमेश्वर के अनन्त गुणों का सरोवर है, नाम ही उसका स्वरूप है, नाम अपने आपको ईश्वर में लगाये रखना है।

मुँह से किसी देवता का नाम घड़ी दो-घड़ी ले लेना नानकदेव का साधित "नाम" नहीं है। नाम के साथ निरन्तर निष्ठा का जुड़ाव नाम कहलाता है। जपना ही कर्म जिह्वा का है। नाम वह है जो आत्म-जागृति पैदा करदे, ऐसा कहा जाता है। सिद्धार्थ ने बुद्धपद प्राप्त किया था, परन्तु नानकदेव तो जन्म से ही बुद्ध थे, वे बचपन से ही निराले थे, अन्य बालकों से सर्वथा भिन्न, असाधारण थे। ईश्वर-निष्ठा इतनी प्रगाढ़ थी कि एक बार गिनती गिनते समय तेरह तक पहुंचने पर समाधि भाव को प्राप्त हो गये। अविरत रूप से उनके मुख से निकलने लगा—तेरा, तेरा, तेरा.... । सब कुछ तेरा ही है प्रभु !

अन्तर्जगत्में रमे हुए नानकदेव अपनी किशोरावस्था में मतंग और मस्त अलमस्त रहा करते थे। महीनों तक अपनी एक कोठरी में उन्मनी भाव में पड़े रहा करते। न खाने की सुधि, न स्वयं को पीने की सुधि। अचानक नाम नशा से प्रकृतस्थ होते तो थोड़ा सांसारिक भाव को ग्रहण करते। अपने अनुभव को ही उन्होंने गुरुमुखी भाषा में गुरु-ग्रन्थजी के अन्दर व्यक्त किया है।

नाम खुमारी नानका चढ़ी रहे दिन-राति।

नानक की बहन नानकी नानकदेव पर अत्यन्त स्नेह रखती थी। वह जानती थी कि यह देव-पुरुष है। पिता के अथक प्रयास से भी नानक संसारी न बन सके। विवाह सोलह वर्ष की अवस्था में करा दिया। नानक तब भी गृही नहीं हुए। जिनका अन्तर रंग गया हो, पक्के रंग से उस पर संसारी कच्चा रंग नहीं चढ़ा करता। श्रीप्रभुजी कहा करते हैं—'मोर के पंख चिते चितराये हुआ करते हैं।' उसे बाहर कोई नहीं रंगता। अतः जैसा पहले कहा गया कि नानकदेवजी भव-प्रत्यय योगी अवतारी पुरुष थे। उन्होंने अपने समय में प्रचलित कर्मकाण्ड के पाखण्ड रूप को ध्वस्त किया तथा यथार्थ मानव-धर्म को प्रकट किया। सत्य, अहिंसा, प्रेम तथा पूर्ण आस्तिक भाव का अनुभव वे मनसा, वाचा, कर्मणा कर सकें। इस हेतु आगे चलकर सिक्ख-पंथ की स्थापना की।

श्री नानकदेव और योग-ऐश्वर्य

आगे श्री नानकदेव जी कई दिनों तक

समाधिस्थ रहने लगे। आत्म एवं ईश साक्षात्कार के पश्चात् प्रकृतस्थ भाव में उन्होंने लोगों को आत्म-जागरण का उपदेश दिया। समय-समय पर अनेक चमत्कार भी दिखाये परन्तु उनका अपना कहना यह था कि नाम-रङ्ग में लीन रहने पर किसी के भले के लिए साधक कुछ कौतुक कर दे तो अहङ्कार न करे बल्कि डरे कि यह कौतुक मुझे किसी बड़े झंझट में न फंसा दे। मन को भी देखते रहना चाहिए, नहीं तो यह स्वयं को धोखा देता है। गुरमुख वही है जो मन की वंचनाओं का ज्ञाता है। आत्म-प्रकाशित होकर गुरु नानकदेव एक विचित्र भाव में रहने लगे। उनका मूल चेतना का भाव था—

ओं सतिनाम करता पुरख,
निरभउ निरवैर।
अकाल मूरत अजूनि,
सैभं गुरु प्रसादि॥

ओंकार रूप ईश्वर का नाम ही सदा सत्य है। वही संसार का कर्ता है, निर्भय एवं अजर-अमर है, अजन्मा है, स्वयंभू है, उनकी कृपा का ही मैं पात्र हूँ।

योगी उदासीन होता है तथा लकीर का फकीर नहीं होता। नानकदेव जी ने कभी प्यार से तो कभी फटकार से आत्म-विस्मृत समाज को जगाया। हिन्दू हो चाहे मुसलमान, राजा हो या रंक सब में उसी एक अजन-रहित निरंजन तत्व को देखते रहे।

एक समय एक रोचक घटना घटित हुई। नाम खुमारी में रंगे नानकदेव को उस इलाके के मुसलमान जागीरदार ने बुलवाया और पूछा-हिन्दू और मुसलमान में कौन श्रेष्ठ है? नानकदेव ने कहा—आज कहने को ही हिन्दू और मुसलमान हैं। हम देखते हैं सभी सच्चे राह से भटके हुए हैं। वैसे सभी एक ही ईश्वर के बन्दे हैं, सब समान हैं।

नवाब ने मुस्कराकर कहा—तो हमारे साथ नमाज क्यों नहीं पढ़ते हो? यह भी तो इबादत है। नानकदेव ने कहा—जो प्रभु की इच्छा।

नमाज का समय हुआ। मस्जिद में तिल धरने की जगह नहीं। बाहर हिन्दू लोगों की भीड़, नानक को लोग जबरदस्ती मुसलमान न बना लें। इस नानक को क्या हुआ है? नमाज आरम्भ हुई, खुदा के सिजदे में मुसलमानोंने उठक-बैठक करना शुरू किया। समयोपरांत नमाज समाप्त हुई। पर यह क्या? नानकदेव यथावत् जो खड़े थे सो खड़े रहे। भाव मग्न ईश्वर के प्रेम में डूबे हुए।

नवाब नवाबी रौब में कड़ककर बोला—हमारे साथ नमाज क्यों नहीं पढ़ी तुमने, ढोंगी, पाखण्डी? चारों ओर स्तब्धता छा गई। नानकदेव अन्तर्लोक से प्रकृतस्थ होकर मुस्कराते हुए बोले—"मैं किसके साथ नमाज पढ़ता?" उन्होंने मर्म भरी वाणी तथा उपेक्षा दृष्टि से नवाब से कहा—आप तो नमाज के समय कन्धार में घोड़े खरीद रहे थे और यह काजी अपनी घोड़ी के बच्चे की देख-रेख कर रहा था कि कहीं बच्चा घर के पास वाले गड्ढे में न गिर जावे।

इतना सुनना था कि नवाब का चेहरा शर्म-ग्लानि से झुक गया। वह इतना ही कह उठा—आप महान् हो!

अब नानकदेव की भ्रमण यात्रा शुरू होती है। मरदाना नामक एक भक्त सेवक साथ रहता है। मरदाना रबाब बजाता है और नानकदेव अन्तर-वाणी में गा उठते हैं—"तू ही निरंकार, तू ही निरंकार, नानक बंदा तेरा।"

इस समय नानकदेव जी की उम्र मात्र तीस वर्ष की थी। परिव्राजक के रूप में लाहौर के एमनाबाद पहुँचे। वहाँ एक साधु स्वभाव वाले बढ़ई के घर निवास किया। उस गरीब ने रूखी-सूखी जो उसे दैव से उपलब्ध था उसीसे श्रद्धापूर्वक नानकदेव की सेवा करता रहा। नानकदेव कुछ दिन उसके पास ही रहे। एमनाबाद के दीवान मलिक भागो ने नानकदेव को आमन्त्रित किया जिसे उन्होंने स्वीकारा नहीं। दीवानने अपना अपमान समझा। उसने नानकदेव के पास जाकर कहा—आप शूद्र जातियों का दिया खाते हो और मुझ जैसों की अवहेलना करते हो। नानकदेवजी ने उससे कहा-जाओ अपने घर से पकवान लाओ। भागो मलिक अत्यन्त प्रसन्न होकर पकवान ले आया। परन्तु यह क्या? नानकदेव ने एक हाथ में बढ़ई के घर की सूखी रोटी और दूसरे हाथ में मलिक का पूआ लेकर निचोड़ना आरम्भ किया। सैकड़ों लोगों ने देखा। पूये से खून की धारा और सूखी रोटी से दुग्ध धारा बह रही थी।

नानकदेव ने कहा—भागो मलिक! बबूल के बीज के साथ काँटे नहीं होते पर पौधे के उगने पर काँटे आप ही निकल आते हैं। अधर्म का पैसा गरीबों को सताकर कमाया धन, उससे उपलब्ध भोग मीठे में लपेटे विष की तरह है। कौन जानकार उसे खायेगा। ऐश्वर्य, धन धर्म की कमाई के नहीं हैं तो वे व्यर्थ हैं। मलिक महोदय की गलित-पलित बुद्धि जाग उठी। वे चरणों में गिरकर रो उठे। नानकदेव ने प्रबोध दिया जिससे वह आगे सच्चे इन्सान बन सके। उसने सारे धन-धान्य को गरीबों में बाँट दिया। और आध्यात्मिक जीवन का सच्चा रस प्राप्त किया।

नानकदेव भ्रमण करते हुए पटना, गया होते हुए ढाका (वर्तमान बंगलादेश की राजधानी) पहुँचे। उन दिनों आसाम, बंगाल जादू-टोने, तन्त्र-मन्त्र के प्रयोगों के लिये विख्यात थे। वहाँ की जादूगरनी स्त्रियों ने नानकदेव और उनके शिष्य मरदाना पर तमाम तन्त्र-मन्त्र किया, परन्तु कोई असर उन पर होता नहीं देखा। नूरशाह नामक जादूगरनियों और तांत्रिकों की सरदारिन ने भी तमाम वशीकरण-मारण आदि क्रियायें की, परन्तु सब व्यर्थ गया। उन्होंने नानकदेव की शरण ग्रहण की, उन्हें पूर्ण पुरुष जानकर सिर झुकाया। नानकदेव जी ने उनको सत-पथ का ज्ञान दिया।

उन्होंने पूर्वकी ओर बर्मा (ब्रह्मा) तक भ्रमण किया। पुनः लौटते हुए पुरी पहुँचे। कहते हैं

कि आरती के समय वे मन्दिर में एक ओर बैठे रहे। इस पर पुजारी ने कहा—आप अच्छे साधु हैं, फिर आपने आरती में क्यों नहीं भाग लिया ? नानकदेव ने कहा—कौसी आरती ? आश्चर्य भाव से बोले—मैं तो देख रहा हूँ, सारे संसार का कण-कण उस विश्व-मोहन जगन्नाथ की आरती प्रति पल उतार रहा है।

गगन में थालु रवि चन्द्र दीपक बने,
तारिका मण्डल जनक मोती।
धूप मल आनलो पवणु चवरो,
करे सगल बनराय फूलन्त जोती॥
कैसी आरती होई, भव खंडना तेरी आरती
अनहता सबद वाजंत भेरी।

नानकदेव बारह वर्षों के प्रथम भ्रमणके पश्चात् पुनः पंजाब लौटे।

गोरख-पंथी योगियों से भेंट

गुरु नानकदेव, जैसाकी भूमिका में ही जैसा कहा गया है—काल, प्रति पल परिवर्तन प्रकृति में पैदा कर रहा है। काल से परे की सत्ता ही आत्म-सत्ता है, सद्गुरु पूर्ण ईश्वर है, वही अकाल तत्त्व है। उनकी अनुकम्पा से ही जीव सांसारिक बन्धनों से छूट पाता है। कभी वही सद्गुरु सत्ता गुरु दत्तात्रेय, गोरख, मत्स्येन्द्र, जालन्धर आदि रूप में जीव को जागरण का रास्ता योग द्वारा बताया था, परन्तु समय व्यतीत होने पर रास्ते तो मिट गये, उन्हें मिटना ही था, परन्तु रास्तों के नाम पर तरह-तरह के पंथ और अखाड़े क्षुद्र बुद्धि मनुष्यों ने उन अकाल-मार्गदर्शी लोगों के नाम पर अवश्य बना लिया। मत्स्य-न्यायानुसार चतुर लोग आसन, व्यायाम के नाम पर भोलीभाली जनतामें अपना सिक्का जमाकर ईश्वर की जगह अपने विकृति अहंकार का पोषण करवाने लगते हैं। नानकदेव ने ऐसे साधुओं, अखाड़ेबाजों को भी चेतना प्रदान की।

सन् १९१० में पुनः श्री नानकदेव पंजाब से चलकर बीकानेर, मारवाड़ होते हुए अजमेर पहुँचे। वहाँ जैनियों को प्रबोध प्रदान किया। महाराष्ट्र होते हुये दक्षिण की ओर गमन किया कहा जाता है रास्ते में नरभक्षी "कौड़ा" नामक राक्षसी प्रवृत्ति वाले व्यक्ति को अपनी कृपा से उसके स्वभाव में परिवर्तन किया। वे सुदूर दक्षिण में लङ्का उत्तर में नेपाल, भूटान, चीन तक गये। पश्चिम में मक्का मदीना तक की यात्रा की थी।

ऐसी ही यात्रा में नानकदेव पीलीभीत के पास 'गोरखमता' नामक स्थान पर पहुँचे। वहाँ योगियों के प्रमुख भंगरनाथ ने नानकदेव का स्वागत किया। भंगरनाथ ने नानकदेव की आकृति-प्रकृति से प्रभावित हो पूछा किस पंथ के योगी आप हैं ? नानकदेव का उत्तर था—अकाल पुरुष सच्चिदानन्द के पंथ के।

इस पंथ का आधार क्या है ?

उस पुरुषोत्तम का नाम।

भंगरनाथ ने कहा—जब आप इतने ज्ञानवान् हो, ईश्वर के भक्त हो तो कोई चमत्कार भी दिखाइये।

ज्योतिष की दृष्टि में पुनर्जन्म विज्ञान

श्री डा० महेन्द्र प्रकाश गुप्त

गीता में भगवान् श्रीकृष्ण ने अध्याय २ श्लोक १३ में बड़े स्पष्ट रूप से पुनर्जन्म की घोषणा की है—

देहिनोऽस्मिन्यथा देहे
कौमारं यौवनं जरा।
तथा देहान्तर प्राप्तिर्धीरं-
स्तत्र न मुह्यति ॥

अर्थात्—

देही का शरीर यह जैसे,
शैशव यौवन जरा धरे।
मिले मृत्यु पश्चात् जन्म,
धीर न इसमें मोह करे ॥

गीता के द्वितीय अध्याय के बाइसवें श्लोक में भगवान् श्रीकृष्ण ने स्पष्ट रूप से कहा है कि जैसे हम लोग पुराने वस्त्र उतार कर नवीन वस्त्र धारण करते हैं वैसे ही यह आत्मा पुराने जीर्ण-शीर्ण शरीर को उतार कर नवीन शरीर धारण करती है।

सुकरात से स्वतन्त्रता प्राप्ति तक

आज से हजारों वर्ष पहले यूनान में एक ज्योतिषी ने जन्म लिया था जिसका नाम सुकरात था उसने अपने जीवन काल में अनेक भविष्यवाणियाँ की जो कालान्तर में सत्य साबित हुई। उस समय के अज्ञानी लोगों ने सुकरात को मृत्यु दण्ड दिया। जब उसका मृत्यु का समय अत्यन्त निकट था उनके शिष्य कारागार में उपस्थित हुए थे उन्हें बचाकर निकाल ले जाना चाहते थे किन्तु सुकरात जानते थे कि मृत्यु के बाद जीवन है अतः उन्होंने अपने शिष्यों से कहा था "तुम लोग मृत्यु की ओर बढ़ रहे हो मैं जीवन की ओर जा रहा हूँ" क्योंकि मृत्यु के बाद जीवन अवश्य है यहाँ भौतिक शरीर मरता है आत्मा अजर-अमर है।

पुनर्जन्म के अनेक उदाहरण ईसाइयों के धर्म ग्रन्थ बाइबिल में भरे पड़े हैं ईसा मसीह

मैं चमत्कारों पर विश्वास नहीं करता। मेरा पूर्ण विश्वास उस ईश्वर के नाम में है, परन्तु तुम लोगों को चमत्कार का ही अर्थ समझ में आता है। अतः मैं पूछता हूँ, यह सामने किस फल का वृक्ष है? लोगोंने कहा—रीठे का। जो आज ईश्वरेच्छा से इस पेड़ के फल कड़वे न होकर मीठे होंगे। जोगियों ने फल तोड़कर चखे तो फल मीठे और रसदार हो गये थे।

ऐसे बहुत से चमत्कार श्री नानकदेवजी ने लोगों के अन्दर सच्ची लगन ईश्वर की ओर लगाने हेतु समय-समय पर प्रकट किये।

परन्तु हाय रे काल! इन अकाल की गाढ़ी करनी को भी लोगोंके मन से पोंछ दी। आज कुछ भ्रमित सिक्ख उन योगी गुरु नानक देव की कथनी को भुलाकर अपने मतसे चल कर किसे प्रसन्न करना चाह रहे हैं। यह तो परमदैव को ही ज्ञात होगा। ✿

ने स्वयं कहा था कि बपतिस्मा देने वाले जोन जिनका सिर हैरड ने उतार लिया था, नबी इलियस का ही पुनरावतार है।

इस्लाम धर्म की प्रसिद्ध पुस्तक, उनका धर्म-ग्रन्थ 'कुरान' घोषणा करता है 'तुम मरे हुए थे उसने तुम्हें नया जीवन दिया। वह तुम्हें मार देगा और पुनः जीवित करेगा और अन्त में तुम्हें अपने में समेट लेगा। कुरान में स्पष्ट लिखा है कि मुनकैं नकीब कब्र से निकालकर कार्यों के अनुसार हर व्यक्ति का हिसाब करेंगे।

हिन्दू धर्म में पुनर्जन्म की अपनी तर्क संगत सैद्धान्तिक धारणा है मनुष्य अपने कर्मों से ही देवता बनता है और अपने निकृष्ट कर्मों से ही चौरासी लाख योनियों में भ्रमण करता है। रामचरितमानस स्पष्ट रूप से घोषणा करता है।

करम प्रधान विश्व रचि राखा।
जो जस करहि सो तस फल चाखा॥

मनुष्य योनि कर्म प्रधान है जबकि अन्य योनियाँ केवल भोग प्रधान है उस योनि में भोग के पश्चात् उससे श्रेष्ठ योनि प्राप्ति होती है।

पाश्चात्य विद्वान पाल ब्रोइंग ने अपनी पुस्तक 'लाहिली' में पुनर्जन्म के सिद्धान्त को मान्यता प्रदान करते हुए घोषणा की है—भौतिक शरीर नष्ट हो जाता है, आत्मा ही जीवित रहती है और वह पाप-पुण्य के अनुसार नीचे गिरते हुए या ऊपर उठते हुए दूसरा शरीर धारण करती है।"

विद्वान् जेक लंडन ने पुनर्जन्म की आधार शिला पर एक उपन्यास का सृजन किया है, जिसका नाम है 'स्टार रोवर।' आयरलैण्ड के प्रसिद्ध उपन्यासकार जेम्स जायस ने अपनी सुप्रसिद्ध कृति 'यूलिसिस' में पुनर्जन्म की घटनाओं को बार-बार दोहराया।

अहिंसा के अग्रदूत भारत के राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने कहा था कि—"यदि इस जन्ममें नहीं तो किसी दूसरे जन्ममें मैं समूची मानवता को मैत्रीके आलिंगन में बांध लूंगा।

सुप्रसिद्ध नोबिल पुरस्कार विजेता ईसाक बेशेविस सिंगरने अपनी कहानियों के माध्यम से पुनर्जन्म के सिद्धान्त की घोषणा की। वे कहते हैं—"मृत्यु कुछ नहीं है। यदि सब कुछ ईश्वर का ही अंश है तो मृत्यु हो ही कैसे सकती है? आत्मा तो कभी मरती नहीं है और शरीर शायद ही बहुत समय तक जीवित रह पाता हो।"

पाश्चात्य ज्योतिषी 'कीरो' का रहस्योद्घाटन

ज्योतिष वह सूक्ष्म विज्ञान है जो आत्मा पर पड़ने वाले सूक्ष्म प्राकृतिक प्रभाव (ग्रह, नक्षत्र, राशि) द्वारा पुनर्जन्म का रहस्योद्घाटन करता है। प्रत्येक प्राणी प्रत्येक राष्ट्र का हर घड़ी, हर क्षण प्रकृति के नियमों से शासित होता है। इन्द्रिय विज्ञान अति सूक्ष्म-तम है। प्रसिद्ध ज्योतिर्विद 'कीरो' ने अपनी पुस्तक 'कीरोज बुक ऑफ नम्बरस' में फ्रांसके राजा सेन्ट लुइस के सम्पूर्ण जीवन की घटनाओं को एकत्र कर, उनके जीवन के ५३९

वर्ष बाद फ्रांस में ही उत्पन्न होने वाले राजा लुइस १६ की जन्म से लेकर विवाह और मृत्यु की घटनाओं की निश्चित तिथि समय सन् आदि की एकरूपता के दर्शन कराये हैं तथा यह सिद्ध कर दिया कि पुनर्जन्म का सिद्धान्त प्रकृति का शाश्वत सिद्धान्त है सेन्ट लुइस का जन्म २३ तारीख को सन् १२१५ को हुआ था इसके ठीक ५३९ वर्ष बाद फ्रांस में ही लुइस १६ का जन्म २३ तारीख सन् १७५४ को हुआ था सेन्ट लुइस की शादी सन् १२३१ में हुई उसके ५३९ वर्ष बाद लुइस १६ की शादी सन् १७७० में हुई विस्तृत अध्ययन के लिए कीरो द्वारा प्रणीत उपर्युक्त पुस्तक के चेप्टर १८ का अवलोकन करें, तो पुनर्जन्म की बात स्पष्ट हो जायेगी।

हिन्दू संस्कृति में पुनर्जन्म की धारणा

हिन्दू संस्कृति पुनर्जन्म के सिद्धान्त के वैज्ञानिक महत्व को स्वीकार करती है यही कारण है कि यहाँ मृत्यु के पश्चात् भौतिक शरीर को चिताग्नि में होम कर दिया जाता है आत्मा और शरीर का एक सेतु है जब सेतु टूट जाता है तो आत्मा नदी के उस पार खड़े व्यक्ति को अपने निर्जीव शरीर को इस पर पड़े देखती रहती है। सेतु के टूट जाने के कारण वह पुनः निर्जीव जीर्ण-शीर्ण शरीर में प्रवेश नहीं कर पाती है।

संसार में जो लोग शव को पृथ्वी में गाड़ देते हैं वे पुनर्जन्म के सिद्धान्त को नहीं जानते हैं क्योंकि जब तक इस निर्जीव शरीर की हड्डियाँ तक शेष हैं तब तक मोह वश आत्मा उसे अपना शरीर समझती रहती है। इस संदर्भ में १२ जुलाई ८७ को प्रकाशित 'हिन्दुस्तान साप्ताहिक' में प्रकाशित मिश्र की सत्य कथा पुनर्जन्म लेने के कारण को स्पष्ट करती है।

मिश्र में खुदाई का कार्य आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय के प्रोफेसर विलियम बनार्ड ईसा करा रहे थे। एक दिन खुदाई कराते समय हृदयगति रुक जाने से उनकी मृत्यु हो गई। इसके बाद इस खुदाई के कार्य का ठेका लिया लंका निवासी विजय जयरत्ने ने। उक्त खुदाई के स्थान पर आज से पाँच हजार वर्ष पहले दफन राजकुमारी निफ़ैतिसी की ममी रखी थी। विजय जयरत्ने ने जनरेटरों की व्यवस्था करके खुदाई का काम प्रारम्भ किया। जैसे ही विजय जयरत्ने ममी के पास पहुँचे जनरेटरों ने काम करना बन्द कर दिया। जयरत्ने पर चमगीदड़ों ने कातिलाना हमला बोल दिया। वे बुरी तरह घायल हो गये। रात में चमगीदड़ों ने उनके निवास स्थान पर आक्रमण कर दिया। उनकी पत्नी मायावती की भी मृत्यु हो गई। वे भागकर बम्बई आये एक होटल में ठहरे। रात को विजय जयरत्ने की चीखों से होटल हिल गया लोग जयरत्ने के कमरे की ओर दौड़े। दरवाजा अन्दर से बन्द था। उसे तोड़ा गया तो पता चला कि विजय जयरत्ने मर चुके थे। एक चमगादड़ कमरे में उड़ रहा था। तात्पर्य यह कि पाँच हजार वर्ष पहले भौतिक

शरीर से विलग राजकुमारी निफेतिसी का आत्मा वहाँ बैठ कर ममी की रक्षा करती थी। उस आत्मा ने ही विलय जनरल्ले को मार डाला।

शरीर के नाश का सिद्धान्त अद्वितीय

हिन्दू-दर्शन में भौतिक शरीर को नष्ट कर देने का सिद्धान्त सर्वोपरि है जैसे टूटे-फूटे मकान को कोई व्यक्ति जब तक नहीं छोड़ता जब तक कि वह पूर्णरूप से नष्ट नहीं हो जाता है। जब नष्ट हो जाता है तब वह उसे छोड़-कर कोई किराये का मकान लेकर या स्वयं का मकान बनवाकर रहने लगता है। इसी प्रकार चिताग्नि में भौतिक शरीर के नष्ट हो जाने पर आत्मा दूसरे शरीर को प्राप्त करने का प्रयास करती है यही उस आत्मा का पुनर्जन्म है।

ज्योतिष में पुनर्जन्म पर विचार

ज्योतिष का पुनर्जन्म सिद्धान्त प्रकृति के सूक्ष्म विज्ञान की अदृश्य अणुशक्ति से भविहत है इसी कारण ज्योतिष अतीत और भविष्य का उद्घाटन करती है मनुष्य के जन्मकाल के ग्रह, नक्षत्र, राशियाँ और उन पर पड़ने वाले प्रभाव के माध्यम से किसी भी व्यक्ति, राष्ट्र, विश्व में घटित होने वाली घटनाओं की पूर्ण घोषणा ज्योतिष करती है।

आज से ४५० वर्ष पूर्व फ्रांस में एक ज्यो-तिषी हुआ था जिसका नाम नास्त्रेडेमस था जिसने अपने जीवनकाल में २००० के लगभग भविष्य वाणियाँ कीं। नेपोलियन हिटलर मुसोलनी के पैदा होने के कई सौ वर्ष पूर्व उनके नामों की घोषणा करते हुए उनकी महत्वाकांक्षाओं का वर्णन किया है उनकी लिखी पुस्तक की ५० लाख प्रतियाँ एक सप्ताह के अन्दर ही बिक गयीं।

ज्योतिष शास्त्र के विद्वानों ने सूर्य को आत्मा कहा है। सूर्य रूपी आत्मा जिस राशि में विराजमान होती है उससे उस जातक की पूर्व जन्म की जाति की घोषणा की जा सकती है। अन्य ग्रहों की स्थिति दृष्टि, बल के अनुसार उसके पुनर्जन्म के पूर्व की स्थिति का अवलोकन किया जा सकता है, जैसे ज्योतिष के विद्वान् किसी जातक के जन्म पत्र में पंचमभाव में उच्च का या स्व-गृही सूर्य को देखकर इस बात की घोषणा कर देते हैं कि उनका एक पुत्र बड़ा प्रतापी होगा और देखा यह जाता है कि उस बालक के यहाँ उत्पन्न पुत्र के जन्म पत्र में भी प्रतापी राजयोग का योग विद्यमान है। इसके विप-रीत षष्ठेश (कर्ज) का सम्बन्ध द्वितीय भाव धनभाव तथा एकादश भाव लाभ या द्विती-येश या एकादशेश से होगा तो उस व्यक्ति के बाल्यावस्था में ही उसके आगे के जीवन में कर्जदार होने की घोषणा की जा सकती है। उसके जीवन काल में पड़ने वाले शुभ-अशुभ ग्रहों के प्रभावों के अनुसार किसी व्यक्ति या राष्ट्र के उत्थान-पतन की घोषणायें ज्योतिष शास्त्र द्वारा की जा सकती है। गत तथा आगामी भविष्य के दर्शन को प्रस्तुत करने वाला ज्योतिष शास्त्र एक अद्वितीय विज्ञान है।

卐

विश्व-विभूति श्री कृष्णचन्द्र
और
उनका गीता

❀ डा० श्री हरिशङ्कर शर्मा

श्रीकृष्णचन्द्र मानवता उन्नायक थे,
वे कर्मवीर नम-न्याय-नीति नायक थे।
मानव को ज्ञान दिया अज्ञान मिटाया,
सारथि बन रण में आत्म-तत्त्व समझाया ॥

भगवान् कृष्ण ने अत्याचार मिटाया,
कर कंस ध्वंस अनुपम आदर्श दिखाया।
श्री उग्रसेन को पुनः प्रजेश बनाया,
सद् रीति—नीति का भव्य भाव उमगाया ॥

माया-ममता में फँस अर्जुन घबराया,
कर्तव्यहीन हो कुछ न समझ में आया।
कम्पित थी देह भीरु व भरमाया था,
भौतिकता-जन्य मोह मन पर छाया था ॥

तब योगिराज ने गीता तत्त्व सुनाया,
है अमर आत्मा ! नश्वर है सब काया।
भौतिकता का ही नाश हुआ करता है,
अज, अमर आत्म मरा न वह मरता है ॥

गीता में वह मानव-आदर्श दिखाया,
जिसका प्रभाव वसुधा भर पर है छाया।
यह ग्रन्थ मुक्ति का मार्ग सुझा देता है,
माया ममता की आग 'बुझा देता है ॥'

आचारवान्, विद्वान्, कुशल, अधिकारी,
सब जनता के श्रद्धेय, मित्र, हितकारी।
दे-दे उपदेश सुभद्र भाव भरते थे,
मन, वचन, कर्म से सबका शुभ करते थे ॥

[लेखक की कृति—'राम राज्य' से]

गौ-सेवा का महत्व

श्रीमती सुमङ्गलादेवी

यों तो सृष्टि में किसी भी योग्य पात्र की सेवा की जाय तो वह अवश्य ही अच्छा फल प्रदान करती है, परन्तु गौ-सेवा की तो बात ही निराली है। गौ-सेवा के सम्बन्ध में आराध्यदेव के मुखारविन्द से ये विचार उस समय प्रकट हुए थे, जब श्री सिद्धगुफा सवाई की पवित्र गौशाला में हमारे पूज्य गुरु-भाइयों द्वारा गौओं की उचित देखभाल नहीं की गई थी। श्रीमुख ने कहा कि मेरी बार-बार की हिदायत के बावजूद भी पता नहीं क्यों तुम लोग गौओंकी उचित सेवा नहीं करते। श्रीमुख ने कहा कि हमारे शास्त्रों में स्पष्ट वर्णन मिलता है कि गौ के शरीर में तैंतीस करोड़ देवताओं का वास होता है। श्रीमुख ने आगे उपदेशित करना आरम्भ किया कि इस बात का हमें भी स्पष्ट अनुभव है कि गौ-सेवा के द्वारा किसी भी आधिभौतिक या आधिदैविक कष्ट का पूर्णरूपेण निवारण हो जाता है। श्रीमुख ने बतलाना आरम्भ किया कि तृप्त गाय के आशीर्वाद से सभी कार्य स्वतः हो जाया करते हैं। इस बात को और स्पष्ट करने के लिए उन्होंने बतलाना आरम्भ किया कि जब मैं कनखल में था तो एक आदमी हमारे पास आया और उसने अपना कष्ट बतलाते हुए कहा कि वह हर समय प्रेत-बाधा से पीड़ित रहता है। उस समय जब मैं कनखल में था, मैंने एक गाय पाल रखी थी। मैंने उससे कहा कि देखो! हमारे पास यह गाय है, तुम इसकी उचित सेवा किया करो, जिससे यह हरदम तृप्त रहे। उस आदमी ने प्रश्न किया कि महाराज! तृप्त का क्या मतलब है? मैंने उसे बताया कि गाय को समय से भोजन, दाना और पानी दिया करो उसके रहने के स्थान को सदैव स्वच्छ और पवित्र रखो। गर्मी के दिनों में छाया में रखो, जाड़े में धूप में रखो और बरसात के दिनों में भी उसकी उचित व्यवस्था रखो। तुमको जो कार्य ऐसा लगे कि गाय की इस समय यह सेवा करनी चाहिए, तुम उस समय उसकी वही सेवा किया करो। यदि तुम ऐसा करोगे तो वह सभी प्रकार से प्रसन्न रहेगी और तुमको देखकर वह उतना ही प्यार करेगी, जितना अपने बछड़े से करती है। इसी को कहते हैं कि गाय तृप्त है। श्रीमुखने उपदेशित किया कि उसने हमारी आज्ञा का विधिवत् पालन किया। हमने उससे कहा कि जब प्रेत-बाधा तुम्हारे पास न रहे, तब तुम हमें बतलाना।

कुछ दिन गाय की लगातार सेवा करने के बाद उसने हमें बतलाया कि महाराजजी! जब मैं गाय की सेवा से सम्बन्धित कोई कार्य करता हूं या गाय के पास मौजूद रहता हूँ तो हमें प्रेत-बाधा नहीं सताती, शेष समय में हमें प्रेत-बाधा रहती है। उसकी इन बातों को सुनकर हमने उससे कहा कि अब तुम अपने घरको वापस चले जाओ। घर पर एक गाय खरीदकर उसकी इतनी सेवा करो कि वह सदैव तृप्त रहा करे। मेरी आज्ञाके पालनार्थ वह अपने घर लौट गया। घर जाकर उसने एक गाय खरीदी और उसकी खूब भली

प्रकार से सेवा करनी आरम्भ कर दी। इस प्रकार गाय उससे हरदम तृप्त रहने लगी। करीब छः महीने बाद जब वह हमसे मिलने आया तो उसने बतलाया कि अब मेरे ऊपर प्रेत-बाधा का नामोनिशान नहीं है, उसके बाद उसे प्रेत-बाधा हुई ही नहीं। आज उसका पूरा परिवार देवताओं की तरह गौ की सेवा तथा देखभाल करता है, ऐसी फलदायी है गौ की सेवा। केवल गौ की सेवा से प्रेत-बाधा स्वतः शान्त हो जाया करती है।

इसी तारतम्य में श्रीगुरु ने एक और साधक श्री विद्याराम के साथ घटित गौ-सेवा से होने वाली घटना का वर्णन किया। श्रीगुरु ने बतलाना आरम्भ किया कि इसी आगरा जिले के समीपवर्ती किसी गाँव का निवासी एक साधक जिसका नाम विद्याराम था, इस आश्रम पर आया। उसने बड़े ही आर्त्तभाव से प्रार्थना की कि महाराज! हम निःसन्तान हैं। पड़ोसी और गाँव वाले अनेक प्रकार से ताने मारते हैं, आप ऐसी कृपा करें कि हमारे कोई सन्तान हो जावे, जिससे हमारे माथे का निःसन्तान वाला कलंक हट जाय। उसे देखकर और उसकी बातों को सुनकर किसी को भी दया आ जाना स्वाभाविक ही था। मैंने उससे कहा कि लल्ला धैर्य रखो। तुम मेरे एक आदेश का यदि पालन कर सको तो तुम्हारा यह कष्ट दूर हो जावेगा। उसने कहा कि महाराज! आपका आदेश क्या है? मैंने कहा कि तुम एक गाय खरीद लो और उसकी खूब सेवा करो। समय पर उसे भोजन, पानी और दाना दिया करो। गरमी धूप और वर्षा तथा जाड़े में उसकी उचित व्यवस्था रखो। उसके निवास स्थान को सदैव स्वच्छ एवं पवित्र रखो। तुम उसकी इतनी सेवा करो जिससे वह तुम्हें देखकर उतना ही प्रसन्न एवं आह्लादित हो जितना अपने बच्चों को देखकर होती है। यदि तुम ऐसा करोगे तो तृप्त गाय के आशीर्वाद से ही तुम्हारी मनोकामना पूर्ण हो जावेगी। उसने अक्षरशः हमारी आज्ञाओं का पालन किया। उसने गाय की खूब अच्छी प्रकार से सेवा की। पति-पत्नी दोनों गाय की खूब सेवा करते रहे एवं उसका दूध पान करते रहे। एक वर्ष के अन्दर ही उसे एक पुत्र-रत्न की प्राप्ति हो गयी। अपने पहले पुत्र-रत्न की सूचना देने वह आश्रम पर आया था। करीब दस साल बाद जब वह मिला तो उसने बतलाया कि उसे कुल मिलाकर सात सन्तानें पैदा हुयीं, वे सभी जीवित हैं और प्रसन्न हैं और स्वस्थ हैं। उसका पूरा परिवार बड़ी ही अच्छी प्रकार से गौ की सेवा करता है, नित्य उसके दूध का पान करता है। उसका पूरा परिवार आधि-व्याधि से रहित है। श्री गुरु ने आदेश दिया कि यह और कुछ नहीं, केवल तृप्त गाय की कृपा का फल है।

श्रीगुरु ने उपदेशित करते हुए कहा कि गौ-सेवा से मेरा तात्पर्य यह नहीं कि दस, बीस, पचास या सौ गायें रखी जायें। गौ-सेवा का मतलब यही है कि एक, दो या

जितनी भी गायें रखी जायें, उनकी उचित सेवा की जाय। समय पर हरी घास, भूसा, खली, पानी उन्हें दिया जाय। उनके रहने के स्थान को स्वच्छ और पवित्र रखा जाय। गायके दूधका कम से कम चौथाई हिस्सा उसके बच्चे के लिये अवश्य ही छोड़ दिया जाय। जाड़ा, गर्मी और बरसात में उनके निवास की उचित व्यवस्था रखी जाय। इस प्रकार गाय की उचित सेवा करने से तथा उसे तृप्त रखने से प्राणी अवश्य ही आधिभौतिक तथा आधिदैविक विपत्तियों से छुटकारा पा सकता है। तृप्त गाय का दूध सेवन करने से अवश्य ही मनुष्य की सांसारिक और आध्यात्मिक प्रगति होगी, इसमें तनिक भी संशय की बात नहीं है। अन्त में श्रीमुख ने अपनी ओजस्वी वाणी में कहा कि यदि किसी को मेरी बात पर विश्वास न हो तो वह एक गाय की सेवा करके उसे तृप्त और प्रसन्न करले और फिर हमें बतलावें कि उसका कौनसा कार्य नहीं हो रहा है।

आगे उपदेशित करते हुए श्री प्रभुजी ने अपने मुखारविन्द से कहा कि यदि माता-पिता में पूरा-पूरा दाम्पत्य प्रेम है, पत्नी पतिव्रता तथा पति पत्नीव्रत का पूरा-पूरा पालन करते हैं। दोनों एक-दूसरे को अपने प्राण के समान ही प्यार करते हैं और दोनों तृप्त गाय के दूध का सेवन करते हैं, तो उनसे उत्पन्न हुए बालक या बालिकायें अवश्य ही स्वस्थ एवं निरोग रहेंगे। उनकी वृत्ति जन्म-काल से ही आध्यात्मिक होगी। तृप्त गाय की सेवा से पूरे परिवार में लक्ष्मी का वास रहेगा, संतान की वृद्धि समय पर अवश्य ही हुआ करेगी तथा उसके परिवार के सभी सदस्य जीवन-पर्यन्त निरोग एवं स्वस्थ रहेंगे। एक बात यह है कि जिस परिवार में गौ को उचित सेवा करके हर समय तृप्त रखा जाता है; उस परिवार में लक्ष्मी एवं सरस्वती अपने स्वाभाविक वैमनस्य को त्याग कर समान रूप से उस परिवार पर कृपावान् बनी ही रहती है। उस परिवार के बच्चों की बुद्धि अवश्य ही कुशाग्र हुआ करती है, इसमें रंचमात्र भी संशय की गुञ्जायश नहीं है।

श्री प्रभुजी ने अभी उपदेशित करते हुए सावधान किया कि यह तो रहे तृप्त गाय की सेवासे होने वाले लाभ, परन्तु यदि गाय रख कर उसकी उचित सेवा न की जाय, समय पर उसे घास, खली और भूसा आदि न दिया जाय। गर्मी के दिनों में धूप में छोड़ दिया जाय, जाड़े में उसके लिए उचित व्यवस्था न की जाय, वर्षा के पानी में भीगने छोड़ दिया जाय। साथ ही दूध निकालते समय उसका पूरा दूध निकाल लिया जाय तो जितने लाभ ऊपर वर्णित हैं, वे सभी हानि में बदल जाते हैं। अन्त में श्रीमुख ने अपनी ओजस्वी वाणी में कहा कि यदि किसी को हमारी बातों पर विश्वास न हो तो वह किसी गाय की सेवा करके उसे तृप्त करले और फिर हमें बतलावें कि उसका कौनसा कार्य नहीं हो रहा है।

श्री सद्‌गुरुदेव और उनके कण-कण

❀ श्री विष्णुप्रसाद 'व्यास'

योगिराज महाराज जी,
आनन्द-कन्द सुख धाम।
पाणि जोर श्रद्धा सहित,
बारम्बार प्रणाम॥
वन्दनीय हैं जगत के,
श्री चन्द्रमोहन गुरुदेव।
सन्त रूप धर आये हैं,
पूरण पुरुष अभेव॥
पल-पल क्षण-क्षण कीजिये,
सतगुरु के गुणगान।
रैन दिवस गुरु सुमिरिये,
सब विधि हो कल्यान॥
तने-मन गुरु को सौंपकर,
राखो चरणन सीस।
सतगुरु कृपा से पाइये,
योग—भक्ति व सीस॥
पुण्य-पुञ्ज प्रताप से,
मिला चरण में वास।
बिगड़ी जन्म अनेक की,
बन गई 'विष्णु व्यास'॥

परम पावन योगिराज श्री चन्द्रमोहनजी के परम पुनीत चरणों में दास का कोटि-कोटि दण्डवत् प्रणाम है। आपने अपने सुकोमल तन पर कष्ट सहन कर स्थान-स्थान पर जाकर सत्संग एवं योगामृत की ज्योति प्रज्वलित की। जिस जिसने भी आपके सदुपदेशों और शिक्षा-प्रद अमृत वचनों को श्रद्धापूर्वक हृदयंगम किया। उसके हृदय में ज्ञान का प्रकाश होने से मोह ममता का अन्धकार वहाँ से स्वतः ही पलायन कर गया। आपके सदुपदेश भक्ति-परमार्थ के अभिलाषियों को आज भी प्रकाश प्रदान कर रहे हैं। आप प्रेम भक्ति तथा परमार्थ के साकार रूप हैं। सांसारिक कामनाओं का विष पी-पीकर मृत प्राय: जीवों को नाम का अमृत पिलाकर आपने उनमें नव-चेतना का संचार किया। आपके अनन्त उपकारों से हम जीव जन्म-जन्मान्तर तक उऋण नहीं हो सकते।

एक दिन आपने श्री अमृत वचन कहे कि:—

न तु मां शक्यसे द्रष्टु-
मनेनैव स्वचक्षुषा।
दिव्यं ददामि ते चक्षु:
पश्य मे योगमैश्वरम्॥

अर्थात्—मुझको तू अपने प्राकृत नेत्रों द्वारा देखने में निःसन्देह समर्थ नहीं है, इसलिये मैं तुझे दिव्य चक्षु प्रदान करता हूँ, उससे तू मेरे दिव्य ईश्वरीय स्वरूप को देख।

विचार करने की बात है कि भगवान् श्रीकृष्ण का स्थूल शरीर सम्मुख होते हुये तथा उनसे वार्तालाप करते हुये भी जबकि अर्जुन उनके दिव्य स्वरूप को देख सकने में सक्षम नहीं था, तो क्या उनकी अनुपस्थिति में उन्हें देखा जा सकता है? कहने का अभिप्राय यह कि ईश्वर के निराकार अथवा दिव्य स्वरूप के दर्शन करने के लिये यह आवश्यक है कि उनके सगुण साकार रूप का ध्यान

निरन्तर अभ्यास से हृदय में दृढ़ किया जावे। इसके बिना कुछ भी प्राप्त न होगा। जब निरन्तर अभ्यास से आकार रूप का ध्यान दृढ़ हो जायेगा तो अन्तर्चक्षु खुल जायेंगे, जिससे साकार रूप में ही एक दिन निराकार अथवा दिव्य स्वरूप के दर्शन हो जायेंगे।

परमात्मा के दो स्वरूप हैं—निराकार और साकार। निराकार की ज्योति के दर्शन करने के लिए हृदयमें साकार रूप सद्गुरु का ध्यान दृढ़ करना आवश्यक है, क्योंकि जब तक किसी वस्तु का आकार तथा रूप-रंग ही विदित न हो, तब तक उसका ध्यान कैसे किया जा सकता है? मनुष्यके स्थूल शरीर में सूक्ष्म आत्मा का निवास है, परन्तु इन स्थूल आँखों से आत्मा का दर्शन नहीं किया जा सकता। फिर भी अंदर के सूक्ष्म दिव्य चक्षुओं द्वारा आत्मा का दर्शन करने के लिए स्थूल आँखों की सहायता लेनी आवश्यक है क्योंकि बाहर जगत का प्रतिबिम्ब अन्तर्मानस पर पड़ता है। निराकार परमात्मा सूक्ष्म जगत से साकार सद्गुरु के रूप में स्थूल देह को इसीलिए ही धारण करते हैं कि इस स्थूल रूप का ध्यान दृढ़ हो जाने से सूक्ष्म रूप के भी दर्शन किये जा सकते हैं। स्थूल रूपके निरंतर ध्यान से हृदय में सद्गुरु के रूप में पावन-ज्योति जगमगा उठती है और उस ज्योति को ही निराकार अथवा दिव्य स्वरूप कहा जाता है। इसीलिये सद्गुरुओं ने कहा है—

दोहा

मूल ध्यान गुरु रूप है मूल पूजा गुरु पाँव,
मूल नाम गुरु वचन है मूल सत्य सतभाव।

—कबीरजी

अभिप्राय यह है कि यदि हृदय में परमात्म-ज्योति के दर्शन करने की उत्कट अभिलाषा है तो सद्गुरु के स्वरूपका ध्यान करना अत्यावश्यक है। उपासना अथवा पूजा के लिए सद्गुरु के चरण-कमलों की सेवा करना अनिवार्य है। सद्गुरु के वचनों के साँचे में जीवनको ढालना ही मूलमन्त्र है और सच्चाई एवं श्रद्धा-विश्वास से सब कार्य करना ही परमात्मा को पाने का मूल-मन्त्र है।

मनुष्य में यह विशेषता है कि जिस वस्तु की ओर वह अपना ध्यान केन्द्रित कर दे। जाग्रतावस्था अथवा स्वप्नावस्था में उसी वस्तु का आकार उसकी आँखों के सामने घूमता रहता है। यदि वह अपना ध्यान पूरी तरह उसमें केन्द्रित कर दे, तब निरन्तर अभ्यास से वही आकार अपने वास्तविक रूप में स्पष्ट दिखाई देने लगता है। यहाँ तक कि कई बार तो एकरूपता की स्थिति बन जाती है। अब विचार करने योग्य बात यह है कि—

१. मनुष्य का वास्तविक उद्देश्य क्या है?

२. मनुष्य को अपना ध्यान किस ओर केन्द्रित करना चाहिए?

मनुष्य का वास्तविक उद्देश्य ईश्वर की प्राप्ति है जिसका कि वह स्वयं अंश है। अपने अंशी से एकाकार होना ही मनुष्य जीवन का लक्ष्य है। इसका अर्थ यह है कि परमात्म-प्राप्ति के लिए उसे अपना ध्यान पूरी तरह परमात्मा में केन्द्रित कर देना चाहिए, किन्तु इस लक्ष्य की प्राप्ति कैसे होगी? मनुष्य जब स्थूल चक्षुओं (बाह्य नेत्रों) द्वारा अपना पूरा

ध्यान सद्गुरुदेव के स्वरूप में केन्द्रित कर देगा, तो ध्यान के दृढ़ हो जाने पर सद्गुरु का वही स्वरूप सूक्ष्म रूप परमात्मा अथवा आत्म-ज्योति के दर्शन करा देगा।

सद्गुरु से बढ़कर और कोई नहीं है, वही परमात्मा से मिलाप कराते हैं। वे स्वयं ही हरि हैं, वे अलख, निगम तथा अगोचर हैं।

सद्गुरु परमात्मा का साकार रूप है। अतएव यदि परमात्म-प्राप्ति की अभिलाषा है तो उसके लिये आवश्यक है कि सद्गुरु की शरणमें आकर तथा उनके वचनानुसार जीवन बनाकर उनके पवित्र स्वरूप का ध्यान किया जाय, ऐसा करने से ही उस दिव्य-ज्योति अर्थात् निराकार स्वरूप के दर्शन किये जा सकते हैं, जो कि मनुष्य-जीवन का लक्ष्य है।

सत्पुरुषों के वचन प्रकाश रूप होते हैं। जिनके पढ़ने-सुनने तथा उन पर मनन करने से मनुष्य अपने जीवनके लक्ष्य को भलीभांति जानकर उन वचनों के सहारे अपने लक्ष्य की प्राप्ति कर सकता है।

यदि संसार की स्थिति का निरीक्षण किया जाय तो आम मनुष्य को यह भी पता नहीं कि उसके जीवन का उद्देश्य क्या है और किसलिये उसे ऐसा दुर्लभ जीवन प्राप्त हुआ है? प्रायः देखने में यही आता है कि आम संसारी मनुष्य ने शरीर और इन्द्रियों की तुष्टि को ही अपने जीवन का उद्देश्य मान रखा है। खाना, पीना और रस-भोगों का उपभोग करना—इस सिद्धान्त को ही आम मनुष्य अपने जीवन का लक्ष्य समझकर उसी की पूर्ति में दिन-रात संलग्न है।

यह एक-दो व्यक्तियों की ही अवस्था नहीं, प्रत्युत संसार के अधिकतर मनुष्यों की यही स्थिति है। मनुष्य-जीवनके वास्तविक उद्देश्य से अनभिज्ञ एक-दूसरे की देखा-देखी बिना सोचे-समझे वे इन्द्रियों की तुष्टि और विषय विलासिता के मार्ग पर निरन्तर बढ़ते जा रहे हैं।

यही मनुष्य की भूल और अज्ञानता है। शरीर और इन्द्रियों की तुष्टि तो वह मनुष्येतर योनियों में भी करता आया है फिर यदि मनुष्य इस जन्म में भी, जिसे सन्तों ने दुर्लभ और श्रेष्ठ कहा है। यही कार्य करे तो फिर मनुष्य जन्म की क्या विशेषता हुई? -

परमात्म-प्राप्ति का यह कार्य तभी हो सकता है, जब मनुष्य सत्पुरुषों की चरण-शरण में आकर उनके वचनानुसार अपनी चित्तवृत्ति को एकाग्र करके ईश्वर के ध्यान में केन्द्रित करदे। मनुष्य की चित्तवृत्ति, मन इन्द्रियों के माध्यम से धन-सम्पत्ति, कुटुम्ब-परिवार, जागतिक पदार्थ आदिमें फैली रहती है, इसलिए उसके ध्यान में हर समय वस्तुयें बसी रहती है और इन्हीं का ध्यान उसे सोते जागते आता है। जब तक वह चित्तवृत्तियों को सब ओर से समेटकर पूरी तरह मालिक के ध्यान में केन्द्रित नहीं करेगा, तब तक परमात्मा की प्राप्ति असम्भव है। सांसारिक कार्य में भी जब तक मनुष्य अपनी वृत्तियों को पूरी तरह एकाग्र नहीं करता, तब तक उस कार्य को सम्पन्न कर पाने में वह सफल

नहीं होता, फिर परमात्म-प्राप्ति के परम उद्देश्य की पूर्ति में एकाग्रता की कितनी अधिक आवश्यकता है। यह मनुष्य स्वयं ही सोच सकता है। इसलिये अपनी चित्त-वृत्ति को एकाग्र करके परमात्मा के ध्यान में केन्द्रित करदें।

अब प्रश्न उठता है कि परमात्मा का ध्यान कैसे किया जावे ? ध्यान करने के लिये यह आवश्यक है कि जिसका हमें ध्यान करना है, उस वस्तु का आकार तथा रूप रङ्ग हमें ज्ञात हो। जब तक किसी वस्तु का रूप रङ्ग अथवा उसकी आकृति हमारी आँखों ने न देखी हो उसका ध्यान कर सकना असम्भव है। परमात्मा भी निराकार तथा रूप रहित है; वे इन्द्रियातीत है, मन के अगोचर है, ध्यान-धारणा से परे है फिर उनका ध्यान कोई करे तो कैसे ? निराकार, अलख, अगोचर एवं अचिन्तन के विषय में चिन्तन करना अथवा उसका ध्यान करना मनुष्य के लिये कठिन ही नहीं सर्वथा असम्भव है। मनुष्य कठिनाई को देखते हुए ही निर्गुण निराकार परमात्मा मनुष्य पर असीम अनुकम्पा करके सगुण साकार रूप धारण कर इस धराधाम पर अवतरित होते हैं।

निर्गुण निराकार परमात्मा का ही सगुण साकार रूप है—सन्त सद्गुरुदेव। परमात्मा में और सद्गुरुदेव में तनिक भी अन्तर नहीं। अतएव जो जिज्ञासु परमात्म-ज्योति के दर्शन करना चाहता है, उसे चाहिये कि अपने मन चित्त को एकाग्र करके पूरी तरह सद्गुरु के दर्शन-ध्यान में केन्द्रित करदें। सद्गुरु का ध्यान जब जिज्ञासु के हृदय में दृढ़ हो जायेगा तो उनकी कृपा एवं आशीर्वाद से उसे उनके सूक्ष्म अथवा निराकार रूप के दर्शन करने का सौभाग्य प्राप्त होगा।

जग को जीवन देने वाले परमात्मा तो घट-घट में बसे हैं परन्तु सद्गुरु की सहायता और कृपा के बिना उनका दर्शन प्राप्त नहीं हो सकता। निराकार और साकार में किसका ध्यान करना चाहिये, इस विषय में साकार रूप के ध्यान की पुष्टि करते हुये भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन के प्रति कहते हैं—

क्लेशोऽधिकतरस्तेषाम-
व्यक्ता सक्त चेतसाम् ।
अव्यक्ता हि गतिर्दुःखं
देहवद्भिरवाप्यते ॥
ये तु सर्वाणि कर्माणि
मयि संन्यस्य मत्पराः ।
अनन्येनैव योगेन मां
ध्यायन्त उपासते ॥
तेषामहं समुद्धर्ता
मृत्यु संसार सागरात् ।
भवामिनचिरात्पार्थ
मय्यावेशित चेतसाम् ॥

—गीता/१२/५/७

हे अर्जुन ! निराकार परमात्मा का ध्यान करना अति कठिन है और इसमें मनुष्य को अत्यधिक कठिनाई का सामना और अत्यधिक परिश्रम करना पड़ता है। अव्यक्त की प्राप्ति में मनुष्य को अधिक कष्ट होता है,

परन्तु जो मेरे परायण रहने वाले भक्तजन मुझ सगुण रूप परमेश्वर का ही अनन्य भक्ति योग से निरन्तर सुमिरण-ध्यान करते रहते हैं, उनका मैं शीघ्र ही मृत्यु रूप संसार-समुद्र से उद्धार कर देता हूं।

इसलिये यदि जिज्ञासु परमात्मा की प्राप्ति करना चाहता है तो उसे सब भ्रम और संशय का त्याग करके अपने चित्तकी समस्त वृत्तियों को एकाग्र करके श्रद्धा एवं आस्थापूर्वक परमात्मा के सगुण-साकार रूप सद्गुरु का ध्यान करना चाहिए। बाह्य नेत्रों से सद्गुरु के स्थूल रूप का ध्यान निरन्तर करते रहने से उसकी छाप अन्तर्मानस पर पड़ती जायगी। निरंतर अभ्यास से जब शनैः-शनैः जिज्ञासु के हृदय में सद्गुरु की छवि का ध्यान परिपक्व हो जायेगा, तो उठते-बैठते, चलते-फिरते, सोते-जागते हर समय सद्गुरु का स्वरूप उसकी आंखों से ओझल नहीं होगा। ऐसा ध्यान परिपक्व हो जाने पर जगत् के कण-कण में सद्गुरु का स्वरूप और सद्गुरु में सम्पूर्ण जगत् उसे झलकता दिखाई देगा। सम्पूर्ण सृष्टिमें उसे सद्गुरुदेव की ही ज्योति दिखाई देगी। किन्तु यह सब सद्गुरु के दर्शन-ध्यान और उनकी कृपा से ही सम्भव है।

दोहा

समदृष्टि सतगुरु किया,
दिया अविचल ज्ञान।
जहं देखो तहं एक ही,
दूजा नाहि आन॥
समदृष्टि सतगुरु किया,
मेरा भरम विकार।
जहं देखो तहं एक ही,
साहिब का दीदार॥

—कबीरजी

इसलिये मनुष्य को चाहिए कि अपने जीवन के परम लक्ष्य अर्थात् परमात्म साक्षात्कार के लिए चित्तवृत्तियों को एकाग्र करके सद्गुरु के पावन स्वरूप का ध्यान हृदय में दृढ़ करे और उनके स्वरूप में ही परमात्मा की ज्योति के दर्शन करके अपना जीवन सफल करें।

❀ विचार कण ❀

● खामोश रहने वाले कुत्ते, शान्त रहने वाली नदी और उदास रहने वाली स्त्री से बचकर रहना चाहिए।

● लगातार सफलता हमें दुनिया की तस्वीर का एक पहलू दिखाती है। तस्वीर का दूसरा रूप हम विफलताओं के कारण ही देख पाते हैं।

—कार्लटन

योग-साधना के कुछ नियम

आकेशादानखाग्राच्च,
निरोधावधि कुंभयेत्।
ततः शनैः सव्यनाड्या,
रेचयेत्पवनं शनैः॥

साधक को चाहिए कि—उषःकाल में उठे फिर शिर पर गुरुजी का ध्यान करे और हृदय में इष्ट देवता का ध्यान करे, फिर शौच जावे, दातुन करे, भस्म धारण करे, पवित्र देश में बने मठ में कोमल आसन बिछाकर उस पर बैठकर मन से गुरु और ईश्वर की याद करे। देश-काल की उच्चारण विधिसे संकल्प करके (श्री परमेश्वर की प्रसन्नतापूर्वक समाधि और उसके फल की सिद्धि के लिए ऐसा संकल्प जोड़ देवे) आसन की सिद्धि के लिए अनन्त देव शेष भगवान् का ध्यान करे। मणियों से शोभायमान हजारों फणों पर भूमि-मण्डल को धारण करने वाले अनन्त भगवान् को नमस्कार करके फिर आसनों का अभ्यास करे। थक जाने पर शवासन करे, अन्त में यदि थकान हो तो न करे। विपरीत करणी को कुम्भक से पहले करे, फिर जालन्धर की प्रसन्नता के लिए कुम्भक पूर्व आचमन करके कर्म के अंगभूत प्राणायाम को करे। कूर्म-पुराण में शिवजी के वाक्यानुसार शिष्यों सहित योगेन्द्रों को, गणेशजी को, गुरुजी को, शिवजी को सावधान होकर नमस्कार करे। अभ्यास में सिद्धासन बाँधकर कुम्भक बन्ध-पूर्वक पहले दिन १० प्राणायाम करे, फिर हर रोज पाँच-पाँच बढ़ाता जावे, इस तरह ८० तक बढ़ा लेवे, योगी पहले चन्द्र और सूर्य-भूत नाड़ियों से अभ्यास करे। इसी को विद्वान लोग अनुलोम-विलोम भी कहते हैं। एकाग्र बुद्धिसे बन्धपूर्वक सूर्य-भेदन का अभ्यास करके फिर उज्जायिनी करे फिर सीत्कारी, शीती, भस्त्रिका का अभ्यास करके अन्य प्राणायाम भी करे। गुरुमुख से सुनी मुद्राओं को क्रम से बाँधकर फिर पद्मासन को बाँधकर नाद का अनुचिन्तन करे। इस प्रकार सब अभ्यासों को आदर से ईश्वर के समर्पण करे, उसके बाद उठकर गर्म जलसे स्नान करे, इस प्रकार बुद्धिमान पुरुष संक्षेपसे नित्य कर्मको समाप्त करे। फिर मध्यान्ह में भी अभ्यास करके तथा विश्राम करके भोजन करे। पथ्य-वस्तु ही भोजन करे और अपथ्य वस्तु कभी सेवन न करे। भोजन के अन्त में इलायची तथा लवङ्ग सेवन करे। कोई-कोई योगियों के लिए चूने के बिना कपूर पान का सेवन भी ठीक बतलाते हैं। ये चिन्तामणि में जो कहा है सो बात ठीक नहीं है ऐसे के नित्त पद से द्योतित होता है। भोजन के अनन्तर मोक्ष-शास्त्रों को देखे अथवा प्रभु नाम संकीर्तन रूपी पुराणों को सुने। फिर सायंकाल संध्या करने के अनन्तर पूर्ववत् योग का अभ्यास करे, जब तक दिन तीन घड़ी बाकी रहे तब तक अभ्यास करे। अभ्यास के अनन्तर फिर संध्या करनी चाहिए। फिर आधी रात के समय योगी पूर्ववत् योगाभ्यास करे। विपरीत करणी को सायंकाल तथा रात्रिमें भोजनके अनन्तर नहीं करना चाहिए। ये योग के क्रम बतलाये हैं।

卐

पृष्ठ ४८ से आगे—योग साधना के कुछ नियम

इस लेख का आरम्भ —

आकेशादानखाग्राच

निरोधावधि कुम्भयेत् ।

श्लोक से किया गया है जिसका स्पष्ट अभिप्राय यह है कि—

चरण के नख से लेकर केश पर्यान्त सब शरीर में वायु का निरोध हो ऐसे कुम्भक करें उसके बाद धीरे-धीरे सव्यनाड़ी द्वारा वायु का रेचन करें।

क्योंकि हठ से अथवा शीघ्रता से शरीर में रोका गया वायु रोम कूपों से निकल जाता है देह को फाड़ देता है कुष्ठादिक रोग पैदा कर देता है इसलिये वन के हाथी के समान धीरे-धीरे और शान्ति से वश में करके रखें। इसीलिए सूर्य चन्द्ररूपी नाड़ियों से प्रवेश करना निकलना बतलाया है। इसलिए कुम्भक को बड़े प्रयत्न से करना चाहिए।

—हठयोग प्रदीपिका से

आवश्यक निवेदन

'सिद्धयोग' के प्रस्तुत अङ्क तथा पिछले एक दो अङ्क विद्युत कर्मियों की प्रान्तव्यापी लम्बी हड़तालके कारण प्रेस से मुद्रित होकर विलम्बसे आनेके कारण पाठकों की सेवा में भी कुछ विलम्ब से पहुंचते रहे हैं, इसके लिए हमें खेद है। आगे से हमारा प्रयत्न रहेगा कि पूर्ववत् 'सिद्धयोग' निर्धारित समय पर ही पाठकों की सेवा में पहुंच जाया करे।

—व्यवस्थापक

प्रेस का फोन न० ६५४२८

विभागीय सुविधा की दृष्टि से टेलीफोन विभाग ने 'कर्मयोग प्रिंटिंग प्रेस' तथा 'कर्मयोग प्रकाशन' का फोन न०—६३१६८ था। इसे बदल कर गत एक माह से ६५४२८ कर दिया है। पाठक और सम्बन्धित मित्र इस परिवर्तन को नोट करने की कृपा करें।

—व्यवस्थापक

कर्मयोग प्रिंटिंग, प्रेस

प्रेषक कार्यालय :—

सिद्ध योग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिक पत्र

श्री सिद्धगुफा योग अभिनव केन्द्र, सवाई (हल्लादपुर) आगरा।

PRINTED MATTER
Book—Post

—※—

को ....

प्राण पर विजय

प्राण पर विजय प्राप्त हो जाय तो उससे प्रकट होने वाले चिह्नों को अच्छी तरह देखें। पहली बात यह होती है कि विष्ठा, मूत्र और कफ की मात्रा घटने लगती है, अधिक भोजन करने की शक्ति हो जाती है और विलम्ब से सांस चलती है। शरीर में हल्कापन आता है, शीघ्र चलने की शक्ति प्रकट होती है, हृदय में उत्साह बढ़ता है, स्वर में मिठास आती है, समस्त रोगों का नाश हो जाता है। बल, तेज और सौन्दर्य की वृद्धि होती है। धृति, मेधा, युवापन, …रता और प्रसन्नता आती है।

—उपनिषद्

मुद्रक—देवीप्रसाद शर्मा 'शिव' कर्मयोग प्रिंटिंग प्रेस, [illegible] आगरा-२ फोन [illegible]